पुराणपरिचय

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

पुराण शब्द का अर्थ है – प्राचीन ग्रंथ। प्राचीनता के कारण ही इनका नाम पुराण पड़ा। भारतीय साहित्य में इतिहास के साथ पुराणों का भी नाम आता है। इतिहास की अपेक्षा पुराणों का विषय अधिक विस्तृत है। सृष्टिसृजन, उसका विस्तार, वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों का वर्णन, देव-दानव, ऋषि-महर्षि एवं राजाओं का वंशचरित्र वर्णन पुराणों में यही पाँच बातें रहती हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त भी बहुत सी जानकारी पुराणों में पायी जाती है। पुराण के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ये वेदानुकूल नहीं हैं। इन का अधिकतर भाग कपोलकल्पित, बुद्धिविरुद्ध एवं सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। परन्तु फिर भी इनमें कुछ कहानियाँ एवं दृष्टांत शिक्षाप्रद हैं जिनको अपनाकर मानव अपने जीवन को सुखी बना सकता है। अतः स्वामी शिवानंद लिखते हैं–

The puranas hold a unique place in the history of religious literature of the Hindus..... They are indeed and encyclopaedia of Hindu religion and ethics.

–Lord Krishna His Lilas And Teachings
P-XXVIII

हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य के इतिहास में पुराणों का अद्वितीय स्थान है। वस्तुतः वे हिन्दु धर्म एवं नैतिकता के विश्वकोष है।

भारतीय संस्कृति का सच्चा रूप तभी विदित हो सकता है जब पुराणों का ज्ञान प्राप्त किया जा सके। आज भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप न जानने के कारण ही देश के नवयुवकों में अनुशासन और देश-प्रेम की भावना में कमी आ रही है। मानव जीवन को ऊँचा उठाने वाले सिद्धान्तों का ज्ञान इन्हीं पुराणों से प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः वेदों के विषयों को ही पुराणों में समझाने का प्रयास किया गया है। परन्तु खेद का विषय है कि आज कुछ महानुभाव पुराण के

नाम से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। पुराण तत्त्व की पूरी जानकारी न होने के कारण पाश्चात्य विद्वान् पुराणों को कपोलकल्पित मानते हैं। वे इन्हें कोरी गप्प बता कर इनकी उपेक्षा करते हैं। उन्हीं की देखा देखी भारतीय विद्वान् भी पाश्चात्यों की बातों पर विश्वास करने लगे हैं।

यह पुराण साहित्य तथा भूगोलज्ञान की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। अन्य द्वीपों के साथ-साथ इनमें जम्बू द्वीप का भी बड़ा ही विशद वर्णन हुआ है। इसमें साम्प्रदायिकता का कहीं नाम भी नहीं है। वेदों के ज्ञान भंडार को सरल भाषा में लिख कर परमात्मा की विभूति के नाना रूपों को बड़े ही सुन्दर ढंग से पुराणों में वर्णित किया गया है। इसी आशय को प्रकट करने के लिए मैंने इस पुस्तक 'पुराण परिचय' को पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया है जिसमें 18 पुराणों का सारामृत भर दिया गया है क्योंकि आजकल साधारण पाठक सारे पुराणों को नहीं पढ़ सकता है। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् उसे सारे पुराणों का साधारण ज्ञान हो जायेगा।

हम देखते हैं कि आजकल हमारे देश में कथा वाचक सबसे अधिक कथाएं 'भागवत पुराण' की करते हैं। अतः मैंने 'भागवत की संक्षिप्त कथा' ' नामक शीर्षक से पृथक् विषय भी पाठकों के लिए लिचा दिया है। इसमें भागवत पुराण का सार प्रस्तुत किया गया है ताकि पाठकों को अल्पकाल में इस ग्रंथ का ज्ञान हो जाये। क्योंकि आज के व्यस्त समय में साधारण पाठकों के पास भागवत पुराण जैसे विशाल ग्रंथ के अध्ययन करने का समय नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री जय किशन जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, नरेश बंसल जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। विशेषतः जय किशन जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी मैं कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु अल्पज्ञ एवं अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 2.9.2016

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

दो शब्द

श्री धर्मपाल कपूर जी आजीवन ब्रह्मचारी रह कर धार्मिक साहित्य के अध्ययन और प्रकाशन में जुटे हुए हैं। इन्होंने वैदिक वाङ्मय पर अनेकों पुस्तकें लिखी हैं। लगभग 16 पुस्तकें वे अपने खर्चे पर प्रकाशित करवा कर निःशुल्क बाँट चुके हैं। इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें देश की प्रसिद्ध पुस्तकालयों में भी उपलब्ध हैं। यदि कोई व्यक्ति इन्हें फोन कर के पुस्तक मंगाने का आग्रह भी करता है तो ये तुरन्त ही कोरियर द्वारा पुस्तक भेजने का प्रयास करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'पुराणपरिचय' इनके कठिन परिश्रम का ही परिणाम है।

लोगों में प्रायः यह धारणा पाई जाती है कि पुराणों में अधिकांश असत्य वर्णित है। इसके बावजूद भी पुराण भारतीय इतिहास का ज्वलन्त उदाहरण है। इसमें भक्ति को ज्ञान से अधिक महत्व दिया गया हैं क्योंकि जहाँ भक्ति होती है वहाँ ज्ञान और वैराग्य स्वयं ही पुष्ट हो जाते हैं। अतः पुराण में भक्ति को ही अग्रगण्य माना है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने 18 पुराणों का संक्षिप्त परिचय दिया हैं इनमें सबसे बड़ा स्कन्ध पुराण और सबसे छोटा मार्कण्डेय पुराण हैं इन पुराणों में भागवत पुराण को सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। यह भक्तों के हृदय का हार माना जाता हैं इसमें बारह स्कन्ध हैं इसका दशम स्कन्ध जोकि कृष्ण भक्ति भावना से ओतप्रोत है भक्तों को अत्यंत प्रिय है। नारद, सनकादि और शुकदेव मुनि जैसे मनीषियों ने भागवत सप्ताह यज्ञ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

भागवत पुराण में सृष्टि उत्पत्ति पर भी प्रकाश डाला गया हैं इसकी काल गणना को प्रकट करते हुए लिखा गया है कि 43,20,000 वर्षों की एक चतुर्युगी होती है, 71 चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता हैं 14 मन्वन्तर का एक कल्प होता हैं यही सृष्टि काल

माना जाता है । प्रत्येक कल्प के अन्त में सृष्टि का विनाश होता है तथा आरम्भ में सृष्टि की उत्पत्ति होती है । वर्तमान में वाराह कल्प, वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तर का अठाइसवाँ कलियुग और उसका प्रथम चरण वर्तमान में है । इस प्रकार वर्तमान सृष्टि की उत्पत्ति लगभग 2 अरब पूर्व मानी जाती है । संसार के समस्त विद्वानों का भी यही मत है । एक कल्प की आयु सीमा 4 अरब वर्ष मानी जाती है ।

श्री धर्मपाल कपूर जी ने अपने अथक प्रयास से इस ग्रंथ का अध्ययन करके ग्रंथों का सार प्रस्तुत पुस्तक में रखा है । प्रश्नोत्तरी से पाठकों के ज्ञान में अत्यधिक वृद्धि होगी ऐसा मेरा विश्वास है । इसके बाद भागवत पुराण का सार लिखकर लेखक ने पुराण के संबंध में उत्पन्न हुई भ्राँतियों को दूर करने का प्रयास किया हैं इस पर मैं श्री धर्मपाल कपूर जी का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने मुझे इस ग्रंथ पर दो शब्द लिखने का सुअवसर प्रदान किया । ईश्वर इन्हें अच्छे स्वास्थ्य और लम्बी आयु प्रदान करे जिससे ये साहित्य की रचना में निरन्तर लगे रहें ।

जय किशन
(एम० ए० हिन्दी)
गांव कोट, जिला पंचकूला
मो० 09468340497

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
I.	पुराणपरिचय	1
1.	भागवत पुराण	3
2.	शिव पुराण	4
3.	विष्णु पुराण	5
4.	ब्रह्म पुराण	6
5.	पद्म पुराण	7
6.	नारद पुराण	8
7.	मार्कण्डेय पुराण	9
8.	अग्नि पुराण	10
9.	भविष्य पुराण	11
10.	ब्रह्मवैवर्त पुराण	12
11.	लिंग पुराण	12
12.	वराह पुराण	13
13.	स्कन्द पुराण	13
14.	वामन पुराण	14
15.	कूर्म पुराण	15
16.	मत्स्य पुराण	16
17.	गरूड़ पुराण	16
18.	ब्रह्माण्ड पुराण	17
II.	पुराणप्रश्नोत्तरी	19
III.	भागवत पुराण की संक्षिप्त कथा	26

I. पुराणपरिचय

भारतीय साहित्य में पुराण का महत्वपूर्ण स्थान है। साधारण जनता में भारतीय संस्कृति का इतना अधिक प्रचार जो आज दिखायी पड़ता है उसका कारण पुराण ही है। आज भी पुराणों का जितना साधारण जनता में प्रचार है, उतना किसी का नहीं। परंतु पुराण तत्त्व से पूरी जानकारी न होने के कारण पाश्चात्य विद्वान् पुराणों को कपोलकल्पित मानते हैं। वे पौराणिक कथाओं को कोरीगप्प बता कर उनकी उपेक्षा करते हैं। खेद की बात है कि उन्हीं की देखा-देखी पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के प्रभाव में रहने वाले भारतीय विद्वान् भी उनकी पुराणों को कोरीकल्पना बतलाने लगे हैं। पुराणों की घटनाओं का आधार महाभारतोत्तर काल की जनश्रुतियाँ हैं। इसलिए इनमें विभिन्नता होना स्वाभाविक है। पुराणों की संख्या एवं श्लोक संख्या के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। अतः इस बारे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। देवी भागवत व वामन पुराण आदि ग्रंथों में एक प्रसिद्ध श्लोक है, जिसमें बड़े ही सुन्दर ढंग से सूत्रबद्ध शैली में पुराणों के नाम व संख्या दी गई हैं–

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टकं।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणनि पृथक्-पृथक्।

(1 स्कंध, 3 अ. 22 श्लोक)

म से दो, भ से दो व ब्र से तीन, व से चार पुराण प्रारंभ होते हैं। अ, ना, प, लिं, ग, कू और स्क से एक-एक पुराण प्रारंभ होता है।

मद्वय = म से दो 2 =मत्स्य, मार्कण्डेय
भद्वय = भ से दो = भागवत व भविष्य
ब्रत्रयं =ब्र से तीन = ब्रह्म, ब्रह्मावैवर्त, ब्रह्माण्ड
व चतुष्टकं = व से चार =वामन, विष्णु, वायु, वाराह
अ, ना, प, लिं = अग्नि, नारद, पदम्, लिंग
ग, कू, स्क = गरुड़, कूर्म, स्कंद

इसके अतिरिक्त अठारह पुराणों की सूची नारद पुराण में भी दी गई है। अतः पुराणों की संख्या एवं श्लोकों को निम्नप्रकार से वर्णित किया जाता है–

क्रम सं.	पुराण का नाम	श्लोक संख्या
1.	**भागवत पुराण**	**18000**
2.	**शिव पुराण**	**24000**
3.	**विष्णु पुराण**	**23000**
4.	**पद्म पुराण**	**55000**
5.	**ब्रह्म पुराण**	**10000**
6.	**नारद पुराण**	**25000**
7.	**मार्कण्डेय पुराण (सबसे छोटा पुराण)**	**9000**
8.	**अग्नि पुराण**	**15000**
9.	**भविष्य पुराण**	**14000**
10.	**ब्रह्मवैवर्त पुराण**	**18000**
11.	**लिंग पुराण**	**11000**
12.	**वराह पुराण**	**24000**
13.	**स्कन्द पुराण (सबसे बड़ा पुराण)**	**81100**
14.	**वामन पुराण**	**10000**
15.	**कूर्म पुराण**	**17000**
16.	**मत्स्य पुराण**	**14000**
17.	**गरुड़ पुराण**	**19000**
18.	**ब्रह्माण्ड पुराण**	**12000**
	कुल जोड़	**399100**

1. भागवत पुराण

पुराणों में जितना प्रसिद्ध भागवत पुराण है, उतना अन्य कोई नहीं है। भक्तों के तो यह हृदय का हार है। यह सारे शास्त्रों का सार है। इसके श्लोक बड़े ही सुन्दर और साहित्य की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के हैं। इसमें 12 स्कन्ध, 365 अध्याय, 18000 श्लोक श्रीशुकदेव मुनि और राजा परीक्षित के सम्वाद हैं। इसके नाम से प्रायः प्रत्येक भारतीय परिचित है, चाहे वह पठित हो या अपठित। यह भक्ति का भण्डार है। अन्य पुराणों की भाँति सृष्टि आदि का इसमें भी वर्णन है, परन्तु इसमें मुख्यतः श्रीकृष्ण की लीलाओं और भक्तों के चरित्रों का वर्णन है। इसी की कथा के आधार पर हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों ने कितनी ही उच्च कोटि की रचनाएँ की हैं। इसमें ज्ञान और भक्ति का समन्वय भी दिखाई पड़ता है। वास्तव में वह भक्ति धन्य होती है जिसकी पराकाष्ठा पर पहुँच कर मनुष्य प्राणी मात्र में उस परम सत्ता का अनुभव करता हुआ उसके गुणों में लीन हो जाता है। यही तो जीवन का सार है एवं जीवन का आनन्द है जिसके लिये प्राणी धरती पर जन्म लेता है। प्रह्लाद, ध्रुव आदि के चरित्र आज भी हमारा पथ प्रदर्शित करते हैं।

सूरदास ने 'सूरसागर' में इन्हीं पदों का वर्णन किया है। यही कारण है कि 'सूरसागर' आज भी जन मानस के पटल पर छाया हुआ है। भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से इसका स्थान अन्य पुराणों में सर्वोपरि है। यही कारण है कि इसे सभी पुराणों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। महर्षि दयानंद जी के मतानुसार भागवत पुराण की रचना महर्षि वेदव्यास के द्वारा न होकर बोपदेव की द्वारा की गई है। प्रस्तुत ग्रंथ

कलियुग में हिन्दू समाज का सर्वाधिक पूज्य ग्रंथ है। वैष्णव सम्प्रदाय का यह मुख्य ग्रंथ है और वेदों, उपनिषदों एवं दर्शनों के गंभीर रहस्यमय विषयों का निरूपण इसमें इतनी सरलता से किया गया है कि इसे भारतीय धर्म व संस्कृति का विश्वकोष कहा जाता है। वस्तुतः यह वेद रूपी कल्पवृक्ष का ऐसा पका हुआ फल है जो शुकदेव रूपी तोते के मुख से निःसृत हो जाने के कारण आनन्द की खान बन गया है।

2. शिव पुराण

शिव पुराण शिव भक्तों का बहुत ही प्रिय ग्रंथ है। इसमें एक ही परम तत्त्व शिव से त्रिदेवों के प्राकट्य, ज्योतिर्लिंग-प्रादुर्भाव, सती चरित्र, पार्वती जन्म-विवाह, त्रिपुर-वध, शिवपूजा-विधि, काशी महिमा, अर्जुन द्वारा इन्द्रनील पर्वत पर शिवाराधना का वर्णन है। इसी के आधार पर भारवि ने 'किरातार्जुनीय' ग्रंथ की रचना की है। पार्थिव पूजा विधि, शिव सहस्रनाम, शिवरात्रि महिमा आदि अनेकानेक सुन्दर कथाएँ हैं। वर्तमान में इनकी सात संहिताएँ हैं—विद्येश्वर, रुद्र, शतरुद्र, कोटिरुद्र, उमा, कैलास और वायु है।

इसके अध्ययन से प्रतीत होता है कि शिव मात्र पौराणिक देवता ही नहीं, अपितु वे पंचदेवों में प्रधान, अनादि, सिद्ध ईश्वर है और निगमागम आदि सभी शास्त्रों में महिमामण्डित महादेव है। वेदों में इसको अजन्मा, अव्यक्त, सृष्टिपालक, संहारक आदि नामों से पुकारा

गया है। शिव का अर्थ है—कल्याणकारी। इसकी उपासना सभी व्यक्तियों के लिये कल्याणकारी व सर्व श्रेयस्कर है। ऋषि, महर्षि, देव योगीन्द्र आदि सभी इसकी उपासना करते हैं।

3. विष्णु पुराण

इसके रचयिता महर्षि पराशर हैं। इसमें कृष्ण के चरित्र का वर्णन है। यह पुराण बड़े आदर के साथ देखा जाता है। इसके खण्डों को अंश कहते हैं और वे छः हैं और 126 अध्याय हैं। इसके प्रथम अंश में सृष्टि वर्णन के बाद ध्रुव तथा प्रह्लाद के चरित्र हैं। दूसरे अंश में भूगोल का वर्णन है। तीसरे अंश में चारों आश्रमों के धर्म बतलाये गये हैं। चौथे अंश में इतिहास का वर्णन है जिसमें सोमवंश के राजाओं की कथाएं हैं। पाँचवें अंश में श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। छठे अंश में भक्ति की विवेचना है। यद्यपि यह पुराण छोटा है परन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह बड़ा ही उत्कृष्ट कोटि का है। इसमें ज्ञान और भक्ति का सुन्दर सामंजस्य दर्शाया गया है। विष्णु भक्ति इस पुराण का मुख्य विषय है।

4. ब्रह्म पुराण

इसमें 245 अध्याय, सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशावलि, मन्वन्तर, सोम और सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन अन्य पुराणों की भाँति ही किया गया है। इन विषयों के अतिरिक्त इसमें भारतीय तीर्थों का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। ऐसे तीर्थों के नाम इसमें आये हैं जिनका साधारण लोग नाम तक भी नहीं जानते। इसमें जितने विस्तार से गोमती नदी का वर्णन मिलता है वह अन्य किसी भी पुराण में नहीं मिलता। पुराणों में इसकी गणना प्रथम स्थान पर होने पर यह आदि पुराण के नाम से भी पुकारा जाता है। श्रीमद्भागवत के समान ही श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी इसमें व्यापक रूप से मिलता है। मरण के बाद जीव की क्या दशा होती है इसका भी वर्णन इसमें मिलता है। सांख्य दर्शन के विषयों का सुन्दर विवेचन भी पाया जाता है। इसमें कुछ अध्याय महाभारत के अध्यायों के साथ मिलते हैं। चारों वर्णों, आश्रमों और मानव जीवन के लक्ष्य पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। पार्वती की कथा इसमें बड़ी रोचकता से मिलती है। पितृ-श्राद्धों को भी दर्शाया गया है। सूर्य आदि ग्रहों की स्थिति और विष्णु के पर ब्रह्म, व्रत, दान एवं महत्व को भी इस पुराण में वर्णित किया गया है। योग, गृहस्थ, सदाचार आदि का भी सुन्दर सामजंस्य देखने को मिलता है।

5. पद्म पुराण

यह स्कन्द पुराण को छोड़ कर सभी पुराणों से बड़ा पुराण है। इसमें पांच खण्ड हैं—सृष्टि खण्ड, भूमि खण्ड, स्वर्ग खण्ड, पाताल

खण्ड और उत्तराखण्ड । किसी में ब्रह्म खण्ड और क्रियायोगसार खण्ड भी हैं ।

सृष्टिखण्ड :– इसमें पुलस्त्य ऋषि के द्वारा भीष्म को सर्वप्रथम सृष्टि की रचना कही गई है । उसके बाद पुष्कर नामक तीर्थ के महात्म्य और ब्रह्मा जी के यज्ञ का वर्णन है । फिर दान कितनी तरह के होते हैं और उनसे क्या फल मिलता है इस विषय का विश्लेषण किया गया है । शिव-पार्वती के विवाह की कथा और उनसे उत्पन्न स्वामी कार्तिकेय द्वारा तारकासुर के वध की कथा भी इसी खण्ड में है । श्री रामचन्द्र की कथा, वृत्रासुर संग्राम आदि की भी बड़ी रोचक कथाएं हैं ।

भूमिखण्ड : –इस खण्ड में सबसे पहले शिवशर्मा नामक ब्राह्मण की कहानी है, जो अपने माता-पिता की सेवा के द्वारा स्वर्ग में चला गया था । राजा पृथु की कहानी इसमें देखने योग्य है । महर्षि च्यवन और महाराजा ययाति का कथानक भी बड़ा रोचक तथा शिक्षाप्रद है । सती सुकला के पातिव्रत्य की बड़ी सुन्दर कहानी भारतीय महिलाओं के द्वारा अनुकरण करने योग्य है । शिव और विष्णु को एक ही सिद्ध किया गया है ।

स्वर्गखण्ड : – सारे ब्रह्माण्ड का वर्णन इसमें विस्तार से किया गया है । शकुन्तला की कहानी देखने लायक है । कालिदास ने अपने काव्य नाटकादि पद्म पुराण के आधार पर ही लिखे हैं । कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों का माहात्म्य, विभिन्न वर्णों के कर्त्तव्य, व्यास और जैमिनि का संवाद, समुद्र-मंथन, व्रतों का विस्तार से वर्णन तथा उनका फल– ये इस खण्ड के मुख्य विषय हैं ।

पातालखण्ड :– इस खण्ड में पाताल लोक के वर्णन के साथ निम्न बातें देखने लायक हैं । श्रीराम के राज्याभिषेक और अश्वमेध

यज्ञ का सुन्दर विस्तृत वर्णन, महर्षि पुलस्त्य के वंश का वर्णन, अनेक धार्मिक राजाओं की कहानियों, वृंदावन का वर्णन, श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन, माघ-स्नान फल, महर्षि दधीची की और महर्षि गोतम की कथा ।

उत्तराखण्ड :– इसमें अनेक कथाएं हैं। प्रधान रूप से विष्णु-भक्ति का माहात्म्य वर्णित है । इस पुराण का विष्णु भक्ति की प्रशंसा खास विषय है । वैष्णव लोगों में इस पुराण का अत्यन्त प्रचलन है । इसमें एकादशी-माहात्म्य, गीता के प्रत्येक अध्याय का माहात्म्य, भागवत-माहात्म्य, वृक्षारोपण-महिमा, कार्तिक-माघ- माहात्म्य, भागवत माहात्म्य आदि के साथ ही श्रीराम तथा श्रीकृष्ण-अवतारों की कथा भी विस्तार से वर्णित है । विष्णु भक्तों के चरित भी विस्तार से वर्णित हैं ।

6. नारद पुराण

इस पुराण के दो भाग हैं । प्रथम भाग में 125 अध्याय और द्वितीय भाग में 82 अध्याय हैं । इसमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर कथाएं हैं । 700 श्लोकों, 13 अध्यायों, तीन चरित्रों में माँ दुर्गा की गोपनीय तांत्रिक साधना का वर्णन मिलता है । 13 की संख्या वैदिक साहित्य में शुभ मानी गई है । प्रारम्भ में सृष्टि का वर्णन है । तदनन्तर अनेक धार्मिक उपाख्यान देखने योग्य हैं । इसी भाग में मोक्ष के उपायों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, छन्द आदि शास्त्रों के विषय का विवेचन, मंत्र शास्त्र का प्रतिपादन और

गणेश, सूर्यआदि की स्तुतियाँ इसी में वर्णित हैं। इसी में पुराण का लक्षण और अलग-अलग दानों का विस्तार से वर्णन है। इसके द्वितीय भाग में निम्नलिखित विषय हैं—एकादशी के व्रत का महत्व, वसिष्ठ और राजा मान्धाता का संवाद, गंगा तथा यमुना का वर्णन, हरिद्वार, काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र आदि अनेक तीर्थों का महत्व। तीर्थों का माहात्म्य जानने के लिए यह पुराण एक सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस पुराण में विष्णु भक्ति का सुन्दर विवेचन है। उसी को मुक्ति का परम साधन बतलाया है। भक्ति के प्रसंग में ही अत्यन्त प्रसिद्ध विष्णु भक्त राजा रुक्मांगद की कथा कही गई है।

इतिहास की दृष्टि से इस पुराण का विशेष महत्व है। इसमें अठारहों पुराणों के विषयों की सूची विस्तार से दी गई है। इसमें भी पुराणों के लक्षण सभी घटते है।। नारदजी के द्वारा विष्णुभक्ति का विवेचन इसमें किया गया है। इसलिये इसका नाम नारदीय पुराण है।

7. मार्कण्डेय पुराण

यह पुराण मार्कण्डेय मुनि के द्वारा कहा गया है, इसलिये इसका नाम मार्कण्डेय पुराण पड़ गया। यह पुराण सबसे छोटा है। इसमें केवल 9000 श्लोक हैं। इस पुराण का अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओं में भी हो चुका है। पाश्चात्य विद्वान् इसको सबसे प्राचीन, लोकप्रिय और उपादेय बतलाते हैं। अति प्राचीन प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी मदालसा की जीवनी इसी पुराण में विस्तार से मिलती हैं। उसने यह ज्ञान अपने पुत्र अलर्क को बतलाया था। जिससे उसने भक्ति और ज्ञान का सामंजस्य करके दिखाया। शाक्तों का ही नहीं, समस्त

लोक-परलोक की सुख-समृद्धि चाहने वालों का प्रिय प्रसिद्ध ग्रंथ 'दुर्गासप्तशती' भी इसी पुराण में है। देवी का चरित इसमें खूब विस्तार के साथ बतलाया गया है। इन विषयों के अतिरिक्त पुराणों के विषय सृष्टि, मन्वन्तर, सोम और सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन भी इसमें किया गया है। सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों का इसमें भी वर्णन है। देवी की कथा के लिए ही यह पुराण खास तौर से प्रसिद्ध है। अतः इसका अनुशीलन अत्यन्त कल्याणकारी है।

४. अग्नि पुराण

इसमें 383 अध्याय हैं। इसे अग्नि देव ने महर्षि वसिष्ठ को सुनाया था। इसमें सभी भारतीय विद्याओं का विवेचन किया गया है। एक प्रकार से यह संग्रहग्रंथ है। इसमें निम्नलिखित विषय हैं– रामायण और महाभारत की कथा, अवतारों का वर्णन, मन्दिर तथा मूर्ति-निर्माण और पूजन का प्रकार, योगदर्शन के योगों का वर्णन, वेदान्त दर्शन के विषयों का वर्णन और गीता का सार इनके अतिरिक्त व्याकरण, ज्योतिष, राजनीति, आयुर्वेद, रत्न-विज्ञान, गो-विज्ञान, छन्द और अलंकारों का भी इसमें विवेचन किया गया है। इसमें कोष का भी विषय आया है। इस तरह सभी विद्याओं का यह खजाना है। इसी कारण विद्वानों ने इसको बहुत बाद कही रचना माना है। पुराणों का उद्देश्य वास्तव में सर्वसाधारण में विद्याओं का प्रचार करना था, इसलिए प्रायः सभी पुराणों में विभिन्न विषयों का समावेश किया गया था। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की औषधियों का और सर्प विद्या का इतना विशद वर्णन है कि यदि इसे भारतीय ज्ञान का विश्व कोष

कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। इसी एक पुराण को पढ़ कर मनुष्य सारे विषयों की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकता है। यह पुस्तक सब विषयों के ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

9. भविष्य पुराण

इस पुराण में भविष्य में आनी वाली घटनाओं का वर्णन मिलता है। इसमें सारे युगों के धर्मों का विस्तार से वर्णन है। इसके कुल पाँच पर्व हैं। सृष्टि की रचना से प्रारम्भ करके सारे युगों के मनुष्यों के धर्म बतलाये गये हैं। सूर्य की पूजा का विधान तथा फल पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। कलियुग में सूर्य पूजा का बड़ा ही महत्व है। इस विषय के तत्व तथा विधान अनेकों दृष्टांतों के द्वारा समझाये गये हैं।

10. ब्रह्मवैवर्त पुराण

इस पुराण में चार खण्ड हैं। ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, श्रीकृष्ण जन्मखण्ड और गणेशखण्ड। श्रीकृष्ण की लीलाओं का इस पुराण में बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। राधा को इस पुराण में श्रीकृष्ण की शक्ति माना है और उसके रूप का विस्तार से वर्णन है। इसी पुराण के आधार पर बाद में हिंदी कवियों ने श्रीराधा कृष्ण की लीलाओं को बड़े मनोहर रूप में चित्रित किया है। इसके प्रथम खण्ड में श्रीकृष्ण से सृष्टि की रचना का वर्णन है। प्रकृति खण्ड में श्रीराधाजी का वर्णन है जो श्रीकृष्ण की आज्ञा से लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा आदि

का रूप धारण कर भगवान की सेवा में तैयार रहती है। सावित्री और तुलसी की भी कथाएँ इस खण्ड में हैं। गणेशखण्ड में गणेश जी का जीवन चरित है। कृष्ण जन्मखण्ड में श्रीकृष्ण की ही जीवनी दी गई है। इस पुराण का मुख्य विषय श्रीकृष्ण-भक्ति है और उन्हें हीसारे ब्रह्माण्डों के पैदा करने वाले माना है। श्रीमद्भागवत और इस पुराण के विषय प्रायः मिलते-जुलते हैं। तुलसी आदि का माहात्म्य तथा राधा और कृष्ण नाम की व्युत्पत्ति इस पुराण में देखने योग्य है। इसके अतिरिक्त इसमें ईश्वरकोटि, देव, देवताओं की एक रूपता, महिमा और उनकी साधना, उपासना का सुन्दर उल्लेख है।

11. लिंग पुराण

इस पुराण में श्री शंकर की लिंग रूप में उपासना बताई गई है, इसीलिये इस पुराण का नाम लिंग है। इसमें पूर्व और उत्तर दो भाग हैं। लिंग की उपासना कब से और क्यों चली तथा उसका क्या विधान है– आदि विषयों का सुन्दर विवेचन इसमें किया गया है। शिव के 28 अवतारों तथा शिव के तीर्थों का वर्णन इसमें मिलता है। शिव के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए इस पुराण का बड़ा महत्व है। इसमें सनत्कुमारों, दधीचि, उपमन्यु की कहानियाँ पढ़ने योग्य हैं। दान, श्राद्ध, सूर्यपूजा आदि का भी इसमें विधान बतलाया गया है। शिव के साथ ही विष्णु का भी महत्व बतलाया है। शिव-प्रतिष्ठा का विधान भी इसमें खूब समझाया है। रुद्राक्षयमाला धारण का बड़ा पुण्य इसमें बतलाया गया है। शैव सिद्धान्तों का जैसा सरल, सहज व्यापक व विस्तृत विवेचन इसमें किया गया है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है।

12. वाराह पुराण

इस पुराण में 128 अध्याय हैं और भगवान विष्णु के वराह अवतार की कथा विस्तार से वर्णित है। इसमें व्रतों का विधान तथा फल बतलाया गया है। प्रत्येक मास की द्वादशी का व्रत रखने पर इसमें विशेष जोर दिया गया है। नचिकेता की कहानी तथा मथुरा के विभिन्न तीर्थों का वर्णन इसमें विशेष द्रष्टव्य हैं। वृन्दावन की भूमिका बड़ा महत्व इसमें बतलाया गया है। श्रीकृष्ण ने जिस भूमि में लीलाएँ कीं, उसका गान करके यह पुराण श्रीकृष्ण-भक्ति को सर्वोपरि सिद्ध करता है। यह पुराण अब तक आधा ही प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक यज्ञ, व्रत, तीर्थ, दान, श्राद्ध, तर्पण आदि का भी वर्णन है। अतः इसकी गणना सात्विक पुराणों में की जाती है। इसकी कथा रोचक एवं शिक्षाप्रद है। भगवत्परायण ज्ञान वैराग्य आदि के लिये इसका अध्ययन लाभकारी है।

13. स्कन्द पुराण

स्कन्द के द्वारा कथित होने के कारण इसका नाम 'स्कन्द पुराण' है। स्कन्द शिव-पार्वती के पुत्र थे। यह पुराण सब पुराणों से बड़ा है। इसमें सात खण्ड हैं–

(1) माहेश्वरखण्ड :– इसमें शिव पार्वती की अनेक लीलाओं का वर्णन है। विशेषतः दान के विषय में श्रद्धा व शक्ति का ही विशेष महत्व है।

(2) वैष्णवखण्ड :–इस खण्ड में उड़ीसा स्थित जगन्नाथ जी के मन्दिर, पूजा-विधान और उससे सम्बद्ध अनेक प्रसंगों का वर्णन है।

(3) ब्राह्मखण्ड :– इसमें धर्मारण्य और उज्जयिनी के महाकाल तीर्थ का वर्णन है ।

(4) काशीखण्ड :– इसमें काशीपुरी का माहात्म्य विस्तार से बतलाया गया है ।

(5) रेवाखण्ड :–इसमें सत्यनारायण की कथा और नर्मदा नदी के तट के तीर्थों का वर्णन है ।

(6) नागरखण्ड :– इसमें हाटकेश्वर महादेव, नागर ब्राह्मण तथा गुजरात के तीर्थों का वर्णन है । अन्य मतानुसार तापीखण्ड है, जिसमें तापी नदी के तीर्थों का वर्णन है । तापी नर्मदा की सहायक नदी है ।

(7) प्रभासखण्ड :– प्रभासक्षेत्र का इसमें विस्तार से वर्णन है । द्वारका के पास के स्थान के नाम प्रभासक्षेत्र है । इसमें नाड़ीजंघ का उपाख्यान और महिषासुर वध भी विस्तार से वर्णित है । विचित्र कथाओं के माध्यम से भौगोलिक ज्ञान व प्राचीन इतिहास की ललित प्रस्तुति इसकी पृथक विशेषता है । यहाँ तक कि आज भी इसमें वर्णित विभिन्न व्रत-त्योहारों के दर्शन भारत के घर-घर में किये जा सकते हैं । धार्मिक क्षेत्रों का प्रायः इसमें वर्णन मिलता है ।

14. वामन पुराण

इसमें भगवान विष्णु के वामन अवतार की कहानी दी गई है । विष्णु के अवतारों का और उनमें भी विशेषतः वामन के चरित का इसमें वर्णन है । इसमें भी पूर्व और उत्तर दो भाग हैं । इसमें विष्णु के अवतारों के अतिरिक्त शिव, गणेश, कार्तिकेय आदि के भी चरित हैं ।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित विषय इसमें द्रष्टव्य हैं—जाबालिकी कहानी, कुरुक्षेत्र के तालाब का माहात्म्य, प्रह्लाद और बलि का संवाद और मरुद्गणों की जन्म कथा। कुरुक्षेत्र का वर्णन इस पुराण में विस्तार से मिलता है। इस पुराण के आदि वक्ता महर्षि पुलस्त्य हैं और प्रश्नकर्ता एवं श्रोता नारद है। नारद ने व्यास को व्यास ने शिष्य लोमहर्षण सूत को और सूत जी ने नैमिषारण्या में शौनक आदि मुनियों को इसकी कथा सुनाई थी। अंत में विष्णु भक्ति के उपदेशों में साथ इसका उपसंहार हुआ है।

15. कूर्म पुराण

इस पुराण में भगवान् के कूर्म अवतार की कथा है। इस पुराण में विष्णु तथा शिव का माहात्म्य समानरूप से वर्णित है। शक्ति-पूजा पर भी इसमें बड़ा जोर दिया गया है। इसमें साम्प्रदायिकता की तनिक भी गंध नहीं है। सभी देवता समान हैं। इस पुराण के भी पूर्व और उत्तर दो भाग हैं। पूर्वभाग में काशी और प्रयाग का वर्णन विस्तार से किया गया है। उत्तर भाग में ईश्वरी गीता और व्यास गीता है। ये दोनों गीताएँ गीता के ढंग की है, परंतु इनके विषय उससे भिन्न हैं। विष्णु ने कूर्म अवतार धारण करके इस पुराण को राजा इन्द्रद्यम्न को सुनाया था। इसके पश्चात् उन्होंने सागर मंथन के समय इन्द्रादि देवताओं एवं नारदादि ऋषिगणों से कहा और तीसरी बार तैमिषारण्य के द्वादशवर्षीय रोमहर्षण सूत के द्वारा इसको सुनने का सौभाग्य 80000 ऋषियों को हुआ था।

16. मत्स्य पुराण

यह बड़ा महत्वपूर्ण पुराण है। इसमें पितृवंश का बड़ा विशद वर्णन किया गया है। राजा ययाति की कथा, श्राद्धवर्णन, सहस्रार्जुन की कथा, विष्णु को भृगु ऋषि का शाप और दोनों का बड़े विस्तार से वर्णन इस पुराण की विशेषताएं हैं। इसमें ऋषियों की वंशावली भी विस्तार से दी है। राजधर्म का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया हैं मूर्तियों के लक्षण, प्रतिष्ठाविधान आदि का भी वर्णन इसमें है। इनके अतिरिक्त शिव के चरितों की भी कथाएँ इसमें आती हैं। धर्मशास्त्र की ज्ञातव्य बातें इसी पुराण में मिलती हैं। इसमें भगवान मत्स्य के द्वारा राजा वैवस्वत मनु एवं सप्तर्षियों को जो उपयोगी उपदेश दिये गये थे, का उल्लेख भी मिलता है। सृष्टि के आरम्भ में जब हयग्रीव नामक असुर वेदादि शास्त्रों को चुरा कर पाताल ले गया था तब भगवान् ने मत्स्य अवतार धारण करके वेदों का उद्धार किया था।

17. गरुड़ पुराण

विष्णु ने गरुड़ से किस प्रकार सृष्टि का वर्णन किया था इसी का इस पुराण में वर्णन है। इसमें 19000 श्लोक हैं परन्तु वर्तमान समय में इसमें केवल 7000 श्लोक ही उपलब्ध हैं। इस पुराण में अग्नि पुराण की भाँति अनेक शास्त्रों का सुन्दर विवेचन मिलता है। यह अनेक विद्याओं का कोष है। रत्नों की परीक्षा, आयुर्वेद के निदान और इलाजों का वर्णन, राजनीति वर्णन, छन्द, शास्त्र, सांख्य योग का वर्णन,

गीतासार आदि का विवेचन इसमें अच्छी तरह किया गया है। मृत्यु के बाद जीव की क्या-क्या दशाएँ होती हैं। इसका भी विवेचन इसमें किया गया हैं यह पुराण बड़ा महत्वपूर्ण है। परंतु खेद है कि अज्ञानवश इस पुराण को लोग शुभ दृष्टि से नहीं देखते हैं। यह पुराण ज्ञान का भण्डार है। विविध विषय इसमें मिलते हैं। अग्निपुराण और गरुड़पुराण–ये दो ही ऐसे पुराण हैं जिनमें सब विषय हैं। इसके अध्ययन से मानव को शास्त्र मर्यादा के अनुसार जीवन यापन की शिक्षा मिलती है। इसके अतिरिक्त परिवार की पारमार्थिक आवश्यकता एवं उनके कर्तव्य बोध का भी इसमें उल्लेख किया गया है। विभिन्न दृष्टियों में यह पुराण जिज्ञासुओं के लिये अत्यधिक उपयोगी है। जन साधारण में यह धारणा है कि इसको केवल मृत्यु के समय केवल मृतजीव के कल्याण के लिये सुनाया जाता है यह बिल्कुल गलत धारणा है।

18. ब्रह्माण्ड पुराण

इसमें 156 अध्याय हैं। इस का विषय है सारे ब्रह्माण्ड का विस्तार से वर्णन। वैसे तो सारे ही पुराणों में यह विषय रहता है, परंतु विश्व का जैसा विस्तार से वर्णन इसमें किया गया है वैसा अन्यत्र नहीं। भूगोल के प्रेमी लोगों के लिये इसमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातें हैं। यदि इसका समझकर अध्ययन किया जाये और आधुनिक भूगोल से इसकी तुलना की जाये तो सम्भवतः अनेक बातें नयी-नयी भूगोल शास्त्रियों को इससे मिल सकें।

निष्कर्षतः सारे पुराणों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इनमें अधिकतर बातें अवैदिक, अवैज्ञानिक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। इन

का अध्ययन करना तभी हमारे लिये लाभप्रद होगा यदि हम वे दृष्टांतों जोकि वेदानुकूल है अपने जीवन में अपनाये । जैसे शास्त्रार्थ महारथी श्री अमर स्वामी सरस्वती ने लिखा है–

सनातन धर्मी भाई उन पुराणों को जिनमें कि हमारे पूर्वजों, ऋषियों व महर्षियों पर अश्लील-से-अश्लील दोष थोपे गये हैं । इस प्रकार छाती से चिपकाये बैठे हैं जैसे बन्दरिया अपने मृत बच्चे को चिपकायें रखती है । यह शत-प्रतिशत सत्य बात है कि जब तक सनातन धर्मी इन पुराणों को मानने से इन्कार नहीं करेंगे । तब तक वे आर्य समाज, ईसाइयत व इस्लाम के सामने खड़े होने का साहस कर ही नहीं सकते ।

–पुराणों को पढ़िये तो ! पृ० ९

जैसे नाथू राम जी शंकर शर्मा लिखते हैं–

पोल खुलते ही पुराणों का महातम घट गया,
बुद्ध की बुद्धि बंध गयी, मद जैनमत का घट गया ।
दम घुटा तौरेत का छल बल ज़वरी कर गया ।।
जी जला इञ्जील का दिल बाइबल का फट गया ।।
सामने क़ुरान केले, वेद चारों अड़ गये ।
मार मंत्रों की पड़ी, पर आयतों के झड़ गये ।
डूब कर बहरे दलादल में गपोड़े सड़ गये ।
कुल हदीसों के हवाले भी भंवर में पड़ गये ।।

II. पुराणप्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1 : 18 पुराणों का क्या सार है?

उत्तर **अष्टादश पुराणेशु व्यासस्य वचन द्वयान् ।**
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम ।।

—स्कंद पुराण 1.8

चार वेद, षट शास्त्र में बात मिली है दोय ।
दुःख दीने दुःख होत है सुख दीने सुख होय ।।

पुराणों में दो बातें ही मुख्य है । परोपकार पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना पाप है ।

प्रश्न 2 : पुराण शब्द के क्या अर्थ है?

पुराण शब्द के अर्थ है प्राचीन ग्रंथ । प्राचीनता के कारण ही इन का नाम पुराण पड़ गया । भारतीय साहित्य में इतिहास के साथ पुराणों का विषय अधिक विस्तृत है । अतः इन्हें इतिहास से अलग रखा गया है ।

प्रश्न 3 : पुराण कितने हैं और उन के क्या-क्या नाम है?

उत्तर मुख्य पुराण 18 हैं और उनके निम्नलिखित नाम हैं—

(1) श्रीमद्भागवत पुराण, (2) शिव पुराण, (3) विष्णु पुराण, (4) ब्रह्म पुराण, (5) पद्म पुराण, (6) नारद पुराण, (7) मार्कण्डेय पुराण, (8) अग्नि पुराण, (9) भविष्य पुराण, (10) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (11) लिंग पुराण, (12) वराह पुराण, (13) स्कन्द पुराण, (14) वामन पुराण, (15) कूर्म पुराण, (16) मत्स्य पुराण, (17) गरूड़ पुराण, (18) ब्रह्माण्ड पुराण

प्रश्न 4 : पुराणों में कितने श्लोक हैं?

उत्तर इसके विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न विचार हैं ।

परन्तु नारद पुराण के अनुसार पुराणों में 3,99,100 श्लोक हैं ।

प्रश्न 5 : सब से छोटा पुराण कौन सा है और उसमें कितने श्लोक हैं ।

उत्तर मार्कण्डेपुराण सब से छोटा पुराण हैं और इसमें 9000 श्लोक हैं ।

प्रश्न 6 : सब से बड़ा कौन सा पुराण है और इसमें कितने श्लोक हैं ?

उत्तर : स्कंद पुराण सब से बड़ा पुराण है और इसमें 81100 श्लोक हैं ।

प्रश्न 7 : सर्वश्रेष्ठ पुराण कौनसा है और क्यों ?

उत्तर श्रीमद्भागवत पुराण । जैसे श्रीमद्भागवत के अंत में स्पष्ट लिखा है–

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवत मिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः कवचित् ।।

–12.13.15

यह श्रीमद्भागवत पुराण समस्त उपनिषदों का सार है । जो इस रस-सुधा का पान करके छक चुका है वह किसी और पुराण-शास्त्र में रम नहीं सकता । जैसे नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु और वैष्णवों में श्रीशंकर जी सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणों में श्रीमद्भागवत ।

प्रश्न 8 : श्रीमद्भागवत् का आरम्भ किस श्लोक से होता है ?

श्रीमद्भागवत् का आरम्भ निम्न श्लोक से होता है–

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नमः ।। –1.1.1

सच्चिदानंद स्वरूप श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं, जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के हेतु तथा

आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के तापों का नाश करने वाले हैं ।

प्रश्न 9 : वृत्रासुर राक्षस का वध करने के लिए किस ऋषि के शरीर की हड्डियाँ मांगी गई थी ?

उत्तर दधीचि ऋषि ।

प्रश्न10 : श्रीमद्भागवत के अनुसार सप्तऋषियों के क्या-क्या नाम थे ।

उत्तर श्रीमद्भागवत के अनुसार सप्तऋषियों के निम्न नाम थे–

(1) कश्यप, (2) अत्रि, (3) वसिष्ठ, (4) विश्वामित्र, (5) गौतम, (6) जमदग्नि,(7) भारद्वाज ।

–8वां स्कंद, 13 अध्याय, श्लोक 5

प्रश्न : 11 श्रीमद्भागवत् पुराण के अनुसार रुकमणी के अतिरिक्त कृष्ण की कौन-कौन सी 8 पलियाँ थीं ?

उत्तर श्रीमद्भागवत् के अनुसार रुकमणी के अतिरिक्त कृष्ण की 8 पत्नियाँ निम्नलिखित थीं–

(1) सत्यभामा, (2) जाम्वन्ती, (3) रोहनी, (4) कालिन्दी, (5) सत्या, (6) लक्ष्मा, (7) मित्रवृंदा, (8) सुभद्रा ।

विशेष सूचना – परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण की केवल एक ही पत्नी रुकमणी थी ।

प्रश्न 12 : कंस की कितनी पलियाँ थीं ?

उत्तर कंस की दो पत्नियाँ थीं–एक अस्ति और दूसरी प्राप्ति । ये दोनों बहनें मगधराज जरासंध की पुत्रियाँ थीं ।

–10वां स्कंद 541 अध्याय श्लोक 1

प्रश्न 13 : राधा कौन थी ?

उत्तर केवल ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का नाम आता है जहाँ

राधा कृष्ण का नाम आया है। वस्तुतः पंडितों ने कृष्ण के साथ राधा का नाम वैसे ही जोड़ दिया है जोकि प्रक्षिप्त है।

प्रश्न 14 : श्रीमद्भागवत में कितने स्कंद, अध्याय और श्लोक हैं?

उत्तर 12 स्कंद, 365 अध्याय और 18000 श्लोक हैं।

प्रश्न 15 : महाकवि सूरदास कृत 'सूरसागर' में कितने स्कंद हैं?

उत्तर महाकवि सूरदास कृत 'सूरसागर' में भी श्रीमद्भागवत की भाँति 12 स्कंद हैं। परन्तु यह भागवत का अनुवाद नहीं है क्योंकि इसमें सूरदास की मौलिकता के दर्शन होते हैं।

प्रश्न 16 : महर्षि दयानंद ने किस पुराण का खंडन किया था और उसका क्या नाम है?

उत्तर महर्षि दयानंद ने श्रीमद्भागवत का खंडन किया था और उसका नाम 'भागवत खण्डनम्' रखा था।

प्रश्न 17 : श्रीमद्भागवत का अंतिम श्लोक कौन सा है?

उत्तर श्रीमद्भागवत पुराण का अंतिम श्लोक निम्नलिखित है–

नाम संकीर्तनयस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।

प्रणामों दुःखशमनस्तं नमामि हरिंपरम्।। –12.13.23

जिनके नामों संकीर्तन से सारे पापों को सर्वथा नाश कर देता है और जिनके चरणों में आत्मसमर्पण व प्रणाम सदा के लिये दुःखों को शांत कर देता है, मैं उन्हीं परब्रह्म श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न 18 : विष्णु पुराण के अनुसार कृष्ण की आयु कितनी थी?

उत्तर 125 वर्ष (3227 ई.पू. से 3102 ई.पू. तक)।

प्रश्न 19 : सावित्री सत्यवान की कथा किस पुराण में मिलती है?

उत्तर मत्स्यपुराण ।

प्रश्न 20 : दुर्गासप्तशती ग्रंथ किस पुराण का भाग है?

उत्तर नारद पुराण ।

प्रश्न 21 : हिन्दुओं में मृत्यु के पश्चात् कौन सा पुराण पढ़ा जाता है?

उत्तर गरुड़ पुराण ।

प्रश्न 22 : विष्णु पुराण में कितने अंश हैं और उनके क्या नाम हैं?

उत्तर विष्णु पुराण में छः अंश हैं और उनके निम्नलिखित नाम हैं–

(1) सृष्टि वर्णन - ध्रुव एवं प्रह्लाद के चरित्र, (2) भूगोल का वर्णन, (3) चारों आश्रमों के धर्म का वर्णन, (4) इतिहास का वर्णन, (5) श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन, (6) भक्ति विवेचन ।

प्रश्न 23 : स्कंद पुराण में कितने खंड हैं और उनका सार क्या है?

उत्तर स्कंद पुराण में निम्नलिखित 7 खंड हैं और उनका सार इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है–

(1) महेश्वर खंड - इसमें पार्वती की अनेक लीलाओं का वर्णन है ।

(2) वैष्णव खंड –इसमें प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर उसकी पूजा विधान और उससे सम्बद्ध अनेक प्रसंगों का वर्णन है ।

(3) ब्रह्मखंड – इसमें धर्मरण्य और उज्जयिनी के महाकाल तीर्थ का वर्णन है ।

(4) काशी खंड – इसमें काशीपुरी के महात्म्य का वर्णन है ।

(5) रेवाखंड – इसमें सत्यनारायण की कथा और नर्मदा के तट के तीर्थों का वर्णन है ।

(6) नागर खंड – इसमें हाटकेशवर महादेव नगर ब्रह्म एवं गुराज के तीर्थों का वर्णन है ।

(7) प्रभास खंड – इसमें द्वारका के पास के स्थान प्रवास का वर्णन है ।

प्रश्न 24 : पद्म पुराण के कितने खंड हैं और उनके क्या-क्या नाम हैं ?

उत्तर पद्म पुराण में 5 खंड हैं और उनके नाम निम्नलिखित हैं–

(1) सृष्टि खंड –इसमें पुलस्त्य ऋषि द्वारा भीष्म को सृष्टिसृजन का वर्णन है । तीर्थ के महात्म्य और ब्रह्मा के यज्ञ का वर्णन है । दान कितने प्रकार के होते हैं आदि का भी वर्णन मिलता है ।

(2) भूमिखंड – इसमें शिवशर्मा, राजापृथु, महर्षि च्यवन, एवं ययाति आदि की रोचक एवं शिक्षाप्रद कथाएँ हैं ।

(3) स्वर्गखंड – इसमें सारे ब्रह्माण्ड का वर्णन है, शकुन्तला की कहानी, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों का महात्म्य, व्यास एवं जैमिनी का संवाद समुद्र-मंथन, व्रतों का विस्तार का वर्णन शामिल है ।

(4) पाताल खंड – इसमें पाताल लोक का वर्णन, श्रीराम के राज्याभिषेक एवं अश्वमेध यज्ञ का वर्णन, महर्षि पुलस्त्य के वंश का वर्णन श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन, महर्षि दधीचि एवं महर्षि गौतम की कथाओं का वर्णन है ।

(5) उत्तर खंड –इसमें अनेक कथाएं हैं । जैसे विष्णु-भक्ति का महात्म्य, गीता महात्म्य आदि के

अतिरिक्त श्रीराम व श्रीकृष्ण अवतारों की कथाएँ भी हैं ।

प्रश्न 25 : क्या पुराण आर्ष ग्रंथ हैं और इनके लेखक कौन थे ?

उत्तर पुराण आर्ष ग्रंथ नहीं हैं क्योंकि आर्ष ग्रंथ वे होते हैं जोकि वेदानुकूल हो । पुराणों के लेखकों के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । वस्तुतः पुराण समय-समय पर विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गये । ये किसी एक लेखक की रचनाएँ हैं । वस्तुतः इनमें अधिकतर बातें कपोलकल्पित और अनैतिक हैं । पुराणों के रचयिता वेदव्यास नहीं है । महर्षि दयानंद इसके विषय में लिखते हैं–

जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यास होते तो उनमें इतने गपोड़े न होता व्यास जी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक योगी थे । वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते ।

–सत्यार्थप्रकाश (ग्यारहवाँ समुल्लास)

III. भागवत पुराण की संक्षिप्त कथा

भागवत पुराण के आरम्भ में लिखा गया है कि जिससे इस जगत् की रचना, स्थिति और प्रलय होती है, जो स्वयं प्रकाशस्वरूप है और चराचर जगत् में व्याप्त है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। जो ब्रह्मा आदि को अपने संकल्प मात्र से वेद का ज्ञान दान देता है। जो इस चराचर जगत् को अपनी संकल्प शक्ति से प्रकट करके स्वयं प्रकाशित हो रहा है, ऐसे उस परमशक्तिशाली प्रभु का हम ध्यान करते हैं।

माहात्म्य

एक बार नारद जी पृथ्वी लोक का भ्रमण कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि यमुना जी के तट पर एक तरुणी युवती बड़ी उदास बैठी थी। उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्था में पड़े जोर-जोर से सांस ले रहे थे। वह तरुणी युवती उनकी सेवा कर रही थी और उन्हें चेतन अवस्था में लाने का प्रयत्न कर रही थी। तब नारद जी ने उससे पूछा कि देवी आप कौन हैं, तरुणी युवती ने कहा कि मेरा नाम भक्ति है ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे दो पुत्र हैं। वृंदावन में आने से मेरा शरीर तो पुष्ट हो गया परन्तु मेरे पुत्र अभी भी निस्तेज हैं। नारद जी कहा कि यह कलियुग है। इसी कारण सदाचार, योग और तप नष्ट हो गया है। अब तुम श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करो। उसकी कृपा से तुम्हारे सारे दुःख दूर हो जाएंगे। इससे भक्ति रूपी तरुणी के अंग और भी पुष्ट हुये परन्तु ज्ञान और वैराग्य नामक पुत्रों में चेतना न आई। तब नारद जी ने वेदमंत्रों का उच्चारण किया। इससे वे दोनों उठ खड़े हुये परन्तु उन पर आलस्य छाया रहा। ज्ञान और वैराग्य को चेतन करने हेतु नारद जी ने तप करने का निश्चय किया।

सनकादि ने नारद जी से कहा कि भागवत कथा वेदों और उपनिषदों के सार से बनी है। जिस प्रकार रस वृक्ष की जड़ से शाखा पर्यन्त रहता है फिर भी उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता। जब

वह फल के रूप में आता है तो वह सब को प्रिय लगता है। ठीक इसी प्रकार यह भागवत कथा है जो वेदों और उपनिषदों के सार तत्त्व को प्रदर्शित करती है। श्रीवेदव्यास जी ने इसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के लिये प्रस्तुत किया। अतः ज्ञान और वैराग्य को चेताने के लिए भागवत कथा ही सर्वोपरि है। तब नारद जी ने भागवत ज्ञान यज्ञ करने का संकल्प किया। इस ज्ञान यज्ञ को गंगातट पर करने के लिए नारद और सनकादि ऋषि चल पड़े। वहाँ पहुँच कर सनाकदि ने कहा कि इस कथा के सुनने मात्र से भक्ति प्राप्त हो जाती है। इसलिये इसे सप्ताह यज्ञ भी कहा जाता है।

सनकादि ने नारद जी से कहा कि इस विषय में हम आपको एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं। आत्मदेव नाम का एक ब्राह्मण वेदों का ज्ञाता था। वह सदा भिक्षा से निर्वाह करता था। परन्तु उसके पास कोई सन्तान नहीं थी। इससे वह चिन्तित रहता था। एक दिन एक संन्यासी ने उसकी चिन्ता का कारण पूछा। जब उन्होंने सन्तान के विषय में कहा तो संन्यासी ने उसे एक फल दे दिया और कहा कि इसे अपनी पत्नी को खिला दे। उसने फल अपनी पत्नी को दे दिया। वह स्त्री कुटिल स्वभाव की थी। उसने अपनी सखी से कहा कि मैं यह फल नहीं रखना चाहती और न ही बच्चा पैदा करना चाहती हूँ। यों भी प्रसव के समय भयंकर पीड़ा होती हैं मैं उसे कैसे सह सकूंगी? इस प्रकार यह समस्या उसने अपनी बहन के सामने रखी। उसने कहा मेरे पेट में बच्चा है? प्रसव होने पर वह बच्चा मैं तुम्हें दे दूँगी। तब तक तू गर्भवती होने का नाटक कर। तू मेरे पति को कुछ धन दे देगी तो वह अपना बेटा तुझे दे देगा। मैं नित्य प्रति तेरे घर आकर उस बालक को दूध पिलाती रहूँगी। इस समय यह फल जांच करने के लिये गौ को खिला दे। ब्राह्मणी ने अपनी बहन के कहे अनुसार सब काम कर दिया।

समयानुसार जब बालक का जन्म हुआ तो उसने उसे लाकर अपनी बहिन को दे दिया। ब्राह्मण ने उसका जातकर्म संस्कार करवाया और ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया। इस बालक का नाम धुन्धुकारी रखा गया। तीन मास बाद गौ ने भी एक मानव बालक को जन्म दिया। वह बच्चा बहुत सुन्दर था। गौ से उत्पन्न होने के कारण और उसके कान गौ जैसे होने के कारण उसका नाम गोकर्ण रखा गया। यह बालक बड़ा पंडित और ज्ञनी हुआ। परन्तु ब्राह्मण का पुत्र धुन्धुकारी बड़ा ही दुष्ट निकला। उसमें ब्राह्मण का कोई भी गुण नहीं था। वह चोरी करता तथा मांस मदिरा का सेवन करने लगा। वेश्याओं के जाल में फंस कर उसने अपने पिता की सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी। गोकर्ण ने जब यह देखा तो उसने अपने पिता को संन्यास लेने का परामर्श दिया। इस प्रकार ब्राह्मण ने पुत्र के कहने पर घर छोड़ दिया और संन्यास ले लिया।

पिता के संन्यास लेने पर धुन्धुकारी ने एक दिन अपनी माता को बहुत पीटा और कहा, बता धन कहा रखा है। इससे वह कुंए में जा गिरी और मर गई। धुन्धुकारी ने वेश्याओं को घर में रख लिया और चोरी करके उनके साथ भोग विलास करने लगा। एक दिन वह बहुत सा माल चोरी कर के घर ले आया। रात्रि में स्त्रियों ने विचार किया कि एक दिन यह चोरी करता हुआ अवश्य पकड़ा जाएगा। अतः हम इसे मार कर और धन लेकर भाग जायें। यह विचार कर उन्होंने मिलकर धुन्धुकारी को रस्सी से बांध कर मार डाला। वे सारा माल लेकर भाग गई। धुन्धुकारी अपने कुकर्मों के कारण भयंकर प्रेत हुआ। जब गोकर्ण को इसका पता चला तो वे अपने नगर में आये। वह अपने घर में रात्रि को सो गया। रात्रि में उसे धुन्धुकारी दिखाई दिया। उसके अत्यंत भयंकर रूप थे। तब गोकर्ण ने उसकी मुक्ति पर विचार किया। अन्त में उसे विचार आया कि केवल भागवत सप्ताह ज्ञान यज्ञ से ही इसकी मुक्ति हो सकती है।

अब गोकर्ण व्यासगद्दी पर बैठ कर कथा कहने लगे। उन्होंने एक ब्राह्मण को मुख्य श्रोता बनाया। बहुत से लूले-लंगड़े, अंधे, मंद बुद्धि अपने पापों के प्रायश्चित हेतु वहाँ आ पहुँचे। इस प्रकार वहाँ बहुत भीड़ लग गई। इसे जान कर प्रेत भी वहाँ आ पहुँचा। वायु रूप होने के कारण वह बाहर नहीं बैठ सकता था। अतः वह बांस के एक छिद्र में घुस कर बैठ गया। सायं के समय इस बांस की एक गांठ फट गई। दूसरे दिन दूसरी तथा तीसरे दिन। इस प्रकार सात दिनों में सात गांठों को फोड़ कर धुन्धुकारी प्रेत योनि से मुक्त हो गया। उसके अपने भाई गौकर्ण को प्रणाम किया। जब सप्ताह ज्ञान यज्ञ का योग लगता है तब सब पाप थर्रा उठते हैं। विद्वानों ने देवताओं की सभा में कहा जो लोग भारतवर्ष में भागवत् की कथा नहीं सुनते उनका जन्म वृथा है। श्रावण मास में गोकर्ण जी ने फिर उसी प्रकार सप्ताह क्रम से कथा कही और श्रोताओं ने उसे फिर सुना। तभी वहाँ पर भगवान् श्री विष्णु प्रकट हुये। उन्होंने अपना पांचजन्य शंख बजाया और गोकर्ण को अपने हृदय से लगा कर अपने समान बना लिया। अतः जो भागवत ज्ञान सप्ताह के श्रवण करता है वह फिर कभी माता के गर्भ में नहीं आता।

इस यज्ञ की विधि को करने के लिये सर्वप्रथम ज्योतिषी को बलात्कार मूहर्त पूछना चाहिये। विवाह के जितने धन का प्रबन्ध करना चाहिये। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष ये छः मास मोक्ष प्राप्ति के हैं। कथा का श्रवण किसी तीर्थ में, वन में अथवा घर पर भी अच्छा माना जाता है। कथा से एक दिन पूर्व व्रत धारण करे। श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके मन्त्रोच्चारण से पूजन करे, पश्चात् प्रदक्षिणा करके स्तुति करे। इसके बाद वक्ता का पूजन करे और उसे स्वर्णाभूषण और वस्त्रादि से अलंकृत करे।

वक्ता को कथा सूर्योदय से आरम्भ करके साढ़े तीन पहर तक कथा बांचे। दोपहर के समय बंद रखे। तब भी भगवान के गुणों का

कीर्तन करना चाहिये। व्रत के नियमों का पालन करके के कथा के अंत में उद्यापन करना चाहिए। बारह ब्राह्मणों को उत्तम-उत्तम पदार्थ खिलायें और व्रत की पूर्ति के लिए गौ और स्वर्ण का दान करें। समर्थ हो तो तीन तोले का एक सिंहासन बनवाये उसे पर भागवत की पोथी रख कर पूजा करें। इससे अभीष्ट फल प्रदान होता है जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन है।

भागवत कथा का सार

प्रथम स्कन्ध

भागवत पुराण के प्रथम स्कन्ध में ऋषियों ने सूतजी से कहा कि हे प्रभु! आप निष्पाप हैं। इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रों के ज्ञाता हैं। वेद शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है। आप अपने शिष्यों को गुप्त से गुप्त भेद भी बता दिया करते हैं। तब अवश्य ही आपने कलियुगी जीवों के परम कल्याण के सहज साधन का निश्चय किया है। आप संत समाज के भूषण हैं। कलियुग में लोगों की आयु बहुत कम हो गई है। लोग आलसी और निकम्मे हो गये हैं। पढ़ने में उनकी रुचि नहीं है। इसी कारण वे जीवन में नाना प्रकार की बाधाओं से घिरे हुये हैं। वैसे तो शास्त्र अनेक हैं उनके अध्ययन में समय भी बहुत लगता है। अतः आपसे सविनय अनुरोध है कि आप अपनी बुद्धि से उसका सार निकाल कर प्राणियों के परम कल्याण के लिये हमें सुनाइये।

सूत जी ने कहा जिस समय महर्षि वेदव्यास के सुपुत्र श्री शुकदेव जी का यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं हुआ था। लौकिक वैदिक कर्मों के अनुष्ठान का अवसर भी नहीं आया था। उन्हें अकेले ही संन्यास लेने जाते देख उनके पिता कातर स्वर से पुकारने लगे—बेटा!

बेटा ! परन्तु शुकदेव जी ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा । उस समय तन्मय होने के कारण श्री शुकदेव जी की ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया कि ऐसे सबके हृदय में विराजमान श्री शुकदेव मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ । श्रीमद्भागवत अत्यंत गोपनीय और रहस्यात्मक पुराण है । यह भगवत्स्वरूप का अनुभव कराने वाला और समस्त वेदों का सार है ।

श्री सूत जी कहते हैं कि सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के के निमार्ण की इच्छा की । इच्छा होते ही उन्होंने महतत्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया । उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलायें थीं । उन्होंने कमल जल में शयन करते हुये जब योग निद्रा का विस्तार किया, तब उनके नाभि सरोवर में से एक कमल प्रकट हुआ और उस कमल से प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये । भगवान् के उस विराट् रूप के अंग-प्रत्यंग में ही समस्त लोकों की कल्पना की गई । योगी लोग दिव्य दृष्टि से भगवान् के उस रूप का दर्शन करते हैं । भगवान् का यही पुरुष रूप जिसे नारायण कहते हैं अनेक अवतारों का अक्षय कोष है । ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान् व्यक्तित्व शक्तिशाली हैं, वे सब के सब भगवान् के अंश हैं ।

प्राकृत स्वरूपरहित चिन्मय भगवान् का जो यह स्थूल जगदाकार रूप है, यह उनकी माया के महतत्त्वादि गुणों से भगवान् में ही कतिपय है जैसे बादल वायु के आश्रय में रहते हैं । इस स्थूल रूप से परे भगवान् का एक अव्यक्त सूक्ष्म रूप है, वही सूक्ष्म शरीर है । आत्मा का प्रवेश होने से यही जीव कहलाता है । यही बार-बार उत्पन्न होता है । तत्त्वज्ञानी लोग जानते हैं कि जिस समय परमेश्वर की माया निवृत हो जाती है तो उस समय जीव परमानन्दमय हो जाता है । प्राणियों के अन्तःकरण में रह कर ज्ञानेन्द्रिय और मन के नियन्ता के रूप में उनके विषयों के ग्रहण भी करते हैं परन्तु उनसे अलग रहते हैं चक्रपाणि भगवान् की शक्ति और पराक्रम अनन्त है । उनकी कोई थाह नहीं पा

सकता । वे सारे जगत् के निर्माता होने पर भी उससे सर्वथा परे हैं ।

महर्षि व्यास महर्षि पराशर की सन्तान थे जो माता सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुये थे । मुनिवर ने अपनी दिव्यदृष्टि से समस्त वर्णों और आश्रमों का हित कैसे हो, इस पर विचार किया । इस दृष्टि से उन्होंने वेदों का पृथक्करण कर दिया । वेद की चार संहितायें ऋक्, यजु, साम, अथर्व बना दी गई । यह कार्य उन्होंने अपने चार शिष्यों से करवाया । ऋग्वेद के पैल, सामवेद के जैमिनि, यजुर्वेद के एकमात्र स्नातक वैशम्पायन हुये । अथर्ववेद में प्रवीण हुये दरुणनन्द सुमन्तु मुनि । इतिहास और पुराण को पांचवा वेद कहा जाने लगा ।

प्रथम स्कन्ध अध्याय चार श्लोक 25 के अनुसार स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति तीनों ही वेद श्रवण के अधिकारी नहीं है । इसलिये वे कल्याणकारी शास्त्रोक्त कर्मों के अनुसार आचरण करने में भूल कर बैठते हैं । उनके कल्याणार्थ महामुनि व्यास जी ने बड़ी कृपा करके महाभारत इतिहास की रचना की । इन धार्मिक साहित्यों की रचना के बाद भी महर्षि वेदव्यास के मन को शान्ति प्राप्त नहीं हुई । उनका हृदय अशांत हो उठा । वे अपने को अपूर्ण समझने लगे । इसी के अन्तर्गत उनके आश्रम में महर्षि नारद का प्रादुर्भाव हुआ । उन्होंने अपने संशय को महर्षि नारद के समक्ष रखा । इस पर नारद जी ने व्यास जी से कहा कि आपने भगवान् के निर्मल यश का गान प्रायः नहीं किया जिससे भगवान् संतुष्ट नहीं होते । वह शास्त्र या गान अधूरा है जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण के यश का गान नहीं होता । आपकी दृष्टि अमोघ है । आपकी कीर्ति पवित्र है । आप सत्यपरायण एवं दृढ़व्रत हैं । अतः आप विशेष रूप से भगवान् की लीलाओं का कीर्तन कीजिये ।

अपने विषय में बताते हुए महर्षि नारद ने कहा कि पूर्व जन्म में मैं वेदवाणी ब्राह्मणों की एक दासी का लड़का था । वे योगी वर्षा ऋतु में एक स्थान पर रह रहे थे । बचपन में ही मैं उनकी सेवा में नियुक्त कर दिया गया था । मैं यद्यपि बालक था फिर भी किसी प्रकार की चंचलता

नहीं थी, खेल कूद से दूर रहता था। सदा उनकी सेवा में लगा रहता था। ब्राह्मणों की अनुमति से ही उनके जूठे बर्तनों में लगा जूठन मैं दिन में एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। मैं उनसे प्रतिदिन श्रीकृष्ण की मनोहर कथाएं सुना करता था। इससे मेरी भगवान् में रुचि हो गई तथा मेरी बुद्धि भी विमल एवम् निश्चल हो गई। अतः भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समस्त कर्मों को समर्पित कर देना ही संसार के तीनों तापों की एकमात्र औषधि है। व्याज जी, आपका ज्ञान पूर्ण है, आप भी भगवान् की प्रेममयी लीला का वर्णन कीजिए। शान्ति प्राप्ति हेतु इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है।

महर्षि नारद के सद्वचनों को सुनकर महर्षि व्यास ने श्रीमद्भागवत की रचना की तथा अपने पुत्र शुकदेव को इसे पढ़ाया। शुकदेव जी ने बड़े ही श्रद्धा भाव से इस ग्रंथ का अध्ययन किया। सूत जी शौनकादि ऋषियों से पाण्डवों के स्वर्गारोहण तथा राजा परीक्षित के जन्म, कर्म और मोक्ष की कथा का वर्णन करते हैं। महाभारत युद्ध के पश्चात् अश्वत्थामा द्रौपदी के पुत्रों की सोई हुई अवस्था में वध कर देता है। यद्यपि अश्वत्थामा को भी इस कृत्य से आत्मग्लानि होती है फिर भी वह अपने को बचाने के लिये एकान्त वन में चला जाता है। पीछे-पीछे अर्जुन रथ पर सवार होकर उसको पकड़ने जाता है। अश्वत्थामा ने अर्जुन को देख उस पर ब्रह्मास्त्र चला दिया। इस पर अर्जुन ने भी ब्रह्मस्त्र चला दिया। जिसने पृथिवी पर आग बरसने लगी। श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने दोनों ब्रह्मास्त्रों को शांत कर दिया। अश्वत्थामा को बंदी बना कर द्रौपदी के सामने पेश किया। परन्तु द्रौपदी ने उसे छोड़ देने के लिये कहा। भीम ने उसके सिर से मणि निकाल ली जिससे वह निस्तेज हो गया।

तब श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को लेकर उनके मृतक बंधुओं को जल दान करवाया। युधिष्ठिर को उसको राज्य दिला कर उससे तीन अश्वमेध यज्ञ करवाये। अपने सुदर्शन चक्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा

की। तब पाण्डवों से विदा लेकर वे अपनी राजधानी द्वारका लौट आये। युधिष्ठिर के मन का संताप अभी भी शेष था। अतः वे ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से कुरुक्षेत्र के मैदान में शरशय्या पर पड़े भीष्म पितामह के पास गये। पितामह धर्म, देश और काल के विषय में जानते थे। अतः उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि संसार की ये सब घटनाएं ईश्वर इच्छा के अधीन हैं। उसी का अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रजा का पालन करो। क्योंकि अब तुम्हीं इसके स्वामी और इसे पालन करने में समर्थ हो। उन्होंने पुरुष के स्वाभाविक धर्म, वैराग्य एवम् राग के विभिन्न रुपों तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पर अनेकों उपाख्यान दिये। इसके अन्तर्गत उत्तरायण काल आ पहुँचा था और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। प्राण त्यागने से पूर्व उन्होंने श्रीकृष्ण की मुक्त कंठ से प्रशंसा की तथा उसे धार्मिक शिरोमणि तक की संज्ञा दी। मरते समय उन्होंने अपने को श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया।

भीष्म पितामह और श्रीकृष्ण के उपदेशों से युधिष्ठिर का मन शांत हुआ तथा उनके अन्तःकरण में विज्ञान का उदय हुआ। इस प्रकार वे सागर पर्यन्त सारी पृथ्वी पर धर्मानुसार शासन करने लगे। उनके राज्य में यथेष्ट वर्षा होती थी। उनके राज्य में शान्ति थी तथा सभी अपने-अपने कार्यों में लगे हुये थे। यह सब देखकर श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर से विदाई मांगी। अन्ततः श्रीकृष्ण को विदाई दे दी गई। हस्तिनापुर से विदा होकर वे अपने देश द्वारका पहुँचे। वहाँ के लोगों की विरह को शान्त करते हुए उन्होंने अपना श्रेष्टठ पांचजन्य नामक शंख बजायां शंख बजते ही सारी प्रजा श्रीकृष्ण को दर्शनों के लिये निकल पड़ी। उन्होंने अनेकों प्रकार की भेंटों से अपने राजा का स्वागत किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने बन्धु बांधवों नागरिकों और सैनिकों से योग्यतानुसार मिलकर सब का सम्मान किया। वे सर्वप्रथम अपनी माता देवकी के कक्ष में गये। माता इन्हें देखकर आत्मविभोर हो उठीं।

महाराज युधिष्ठिर के राजमहल में परीक्षित का जन्म हुआ।

उत्तरा का पुत्र परीक्षित जन्म के समय ही तेजस्वी दीख पड़ता था। इस अवसर पर उन्होंने ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौएं, पृथिवी आदि का दान दिया। फिर युधिष्ठिर ने तीन अश्वमेध यज्ञ किये। इससे सम्पूर्ण पृथ्वी पर उनकी जय-जय होने लगी। श्रीकृष्ण भी इस यज्ञ में शामिल थे। इस के पश्चात् वे फिर द्वारिका चले गये। एक लम्बे समय तक उनका कोई भी संदेश नहीं आया। इस पर उनकी सकुशलता जानने के लिये अर्जुन को द्वारिका भेजा गया। काफी समय के बाद अर्जुन हस्तिनापुर वापिस आया तो वह बहुत दुःखी था। उन्होंने श्रीकृष्ण के स्वधामगमन तथा यदुवंश के संहार का वृतांत्त सुनाया। इससे सभी शोकाकुल में डूब गये। युधिष्ठिर ने अपना राज्य परीक्षित को देकर संन्यास की ओर प्रस्थान किया तथा मथुरा का राज्य पर अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को नियुक्त किया गया। इस प्रकार परीक्षित ब्राह्मणों की शिक्षा के अनुसार पृथ्वी का शासन करने लगे। अचानक कलियुग का प्रवेश आरम्भ हुआ। परन्तु महाराज परीक्षित के काल तक कलियुग उसके राज्य में अपना प्रभाव न डाल सका।

एक दिन राजा परीक्षित शिकार खेलने गये। हरिण के पीछे दौड़ते-दौड़ते वे थक गये। उन्हें भूख प्यास सजाने लगी। उन्हें कहीं पानी दिखाया नहीं दिया। वे एक ऋषि के आश्रय में पहुँचे। ऋषि तपस्या में लीन थे। उन्होंने राजा का सम्मान नहीं किया। राजा ने पानी मांगा। परन्तु राजा को कोई उत्तर नहीं मिला। उसे ऋषि पर क्रोध आया। उसने पास में पड़ा मरा हुआ सर्प ऋषि के गले में डाल दिया। जब ऋषि पुत्र ने यह देखा कि उसने राजा को शाप दे दिया कि आज के सातवें दिन तक्षक सर्प उसे डंस लेगा। राजधानी में पहुँचने पर उन्हें अपने इस अनुचित कृत्य का ध्यान आया और उन्होंने ब्राह्मणों की सभा बुला कर इस के प्रायश्चित करने बारे कहा। सभी ब्राह्मणों ने उन्हें भगवान् का मनोहारी चरित्र सुनने की प्रेरणा दी। अतः राजा ने ब्राह्मणों से भगवान् की रासमयी लीलाओं का गायन करने का अनुरोध किया।

द्वितीय स्कन्ध

महात्माओं में विराजमान श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा तुम्हारा लोकहित के लिये किया हुआ प्रश्न बहुत ही उत्तम है। द्वापर के अन्त में मैंने अपने पिता से् भागवत पुराण का अध्ययन किया था। तुम भगवान् के परम भक्त हो। इसलिये इसे में तुम्हें सुनाऊँगा। आत्म ज्ञानी पुरुष ऐसे प्रश्न का बड़ा आदर करते हैं। परीक्षित अभी भी तुम्हारे जीवन की अवधि सात दिन की है। इस बीच तुम जो भी अपने परम कल्याण के लिये करना चाहिये कर लो। मृत्यु के समय आने पर मनुष्य घबराये नहीं। एकान्त स्थान में आसन लगा कर बैठ जाये तथा परम पवित्र प्रणव ओ३म् का जाप करे। प्राणवायु को वश में कर मन का दमन करे। मन को भगवान् के मंगलमय रूप में लगाये। धारणा स्थित हो जाने पर ध्यान में जब योगी ईश्वर को देखता है तो उसे भक्तियोग की प्राप्ति हो जाती है।

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी ने इसी धारणा से सृष्टि विषयक स्मृति प्राप्त की थी जो प्रलयकाल में विलुप्त हो गई थी। इससे उनकी दृष्टि अमोघ हो गई। तब उन्होंने जगत् को वैसा ही रचा जैसा कि यह प्रलय के पहले था। हे राजन्! यदि योगी की इच्छा है कि मैं ब्रह्म लोक में जाऊँ तो उसे ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णा के द्वारा ब्रह्मलोक के लिये प्रस्थान करना चाहिये। साधक को अपने शरीर के भीतर हृदयाकाश में विराजमान भगवान् के स्वरूप की धारणा करनी चाहिये। भगवान् की चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पदम् है। कमल के समान विशाल और कोमल नेत्र हैं। उनके समान किसी का भी ऐश्वर्य नहीं है। जब योगी पुरुष इस मनुष्य लोक को छोड़ना चाहे तो वह सुखपूर्वक आसन पर बैठ कर प्राणों को जीत कर मन से इन्द्रियों का संयम करे। ज्ञान दृष्टि के बल से जिसके चित्त की वासना नष्ट हो गयी है उस ब्रह्मनिष्ठ योगी को शरीर का त्याग करना चाहिये।

योगियों का शरीर वायु की भाँति सूक्ष्म होता है। योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णा के द्वारा जब ब्रह्मलोक के लिये प्रस्थान करता है तब पहले वह आकाश मार्ग से अग्नि लोक को जाता है। वहाँ उसके बचे खुचे मल भी जल जाते हैं। ब्रह्मलोक की आयु ब्रह्मा के समान ही दो परार्द्ध की है। वहाँ न दुःख है न शोक हैं, न बुढ़ापा है और न मृत्यु है। अतः संसार चक्र में पड़े हुये मनुष्य के लिये जिस साधन द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाये उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है।

नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा जी से प्रश्न किया कि हे स्वामी आप केवल मेरे ही नहीं समस्त प्राणियों के स्वामी हैं। अतः बताइये कि इस संसार का आधार क्या है? आप किस के आधार पर है। यह समस्त संसार आपकी ज्ञानदृष्टि में है। अतः इस विषय में आप ठीक-ठीक उपदेश करें। इस पर ब्रह्मा जी ने कहा तुमने जीवों के प्रति करुणा के भाव भर कर यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे भगवान् के प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं। उसी प्रकार मैं भी उसी भगवान् के प्रकाश से प्रकाशित हो कर जगत् में प्रकाश फैलाता हूँ। उसी विराट् पुरुष के मुख से वाणी और अग्नि उत्पन्न हुये। जैसे सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुये बाहर भी प्रकाश फैलाता है वैसे ही परमात्मा समस्त लोकों को अपने प्रकाश से करता है। हे पुत्र! मैं सदा भगवान् को स्मरण करता हूँ। इसलिये मेरी वाणी कभी असत्य नहीं होती। मैं वेदमूर्ति हूँ। मेरा जीवन तपस्यामयी है।

ब्रह्मा जी कहते हैं अनन्त भगवान् ने पृथ्वी का उद्धार करने के लिये यज्ञमय वराह शरीर ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त पृथ्वी का कल्याण करने के लिये अनेक अवतार लिये। महर्षि अत्रि भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करना चाहते थे। भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दे दिया। इसी से भगवान् का नाम दत्तात्रेय पड़ गया।

सृष्टि के आरम्भ में ही ब्रह्मा जी ने विविध लोकों को रचने की इच्छा व्यक्त की। इस कारण उन्होंने कठोर तप किया। इससे भगवान् ने सनक, सनन्दन, सनातन और सनन्तकुमार के रूप में अवतार लिया।

अपने पिता राजा उत्तानपाद के पास बैठे हुये पाँच वर्ष के बालक ध्रुव को उनकी सौतेली माता ने अपने कठोर वचन बाणों से भेद दिया। उनका हृदय ग्लानि से भर गया और अल्प आयु होने पर भी वे तपस्या के लिये जंगल में चले गये। भगवान् ने प्रसन्न होकर ध्रुव को ध्रुवपद का वरदान दिया। राजा नाभि की पत्नी सुदेवी के गर्भ से भगवान् ने ऋषभ देव के रूप में जन्म लिया। चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में मनु सत्यव्रत ने मत्स्य रूप में भगवान को प्राप्त किया। देवताओं के महान् भय को मिटाने के लिये उन्होंने नृसिंह का रूप धारण किया। भगवान् वामन अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे थे। परन्तु गुणों की दृष्टि से वे सबसे बड़े थे। वामन ने तीन पग पृथ्वी लेने के बहाने बलि से सारी पृथ्वी ले ली। दैत्य राज बलि ने अपने सिर पर वामन का चरणामृत धारण किया। अतः नारद तुम्हारे प्रेमभाव से प्रसन्न होकर भगवान् ने तुम्हें भागवत धर्म का आदेश किया। यह केवल भगवान् के भक्तों को ही प्राप्त होता है।

भगवान् धन्वतरि बड़े-बड़े रोगियों को तत्काल ठीक कर देते थे। उन्होंने देवताओं को अमृत पिला कर अमर कर दिया। दैत्यों द्वारा छीना गया यज्ञभाग देवों को पुनः दिला दिया। मायापति भगवान् हम पर अनुग्रह करने के लिये इक्ष्वांकु वंश में श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होते हैं। वे असुरों का संहार करते हैं। उनको धनुष की टंकार से रावण का अहंकार भी नष्ट हो जाता है। दैत्यों का संहार करने के लिए कृष्ण और बलराम अवतरति हुये। इनकी शक्ति वास्तव में अचिन्तय है। समय के फेर से जब लोगों की समझ कम हो जाती है। भगवान् प्रत्येक कल्प में सत्यवती के गर्भ से व्यास के रूप में प्रकट होकर वेद

विद्या का प्रकाश करते हैं। समस्त सृष्टि की रचना और संहार करने वाली माया उनकी एक शक्ति है। ऐसी अनन्य शक्तियों के स्वरूप भगवान् को कौन जान सकता है। जो निष्कपट भाव से अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पण कर देते हैं, भगवान् उन पर कृपा करते हैं और अपने स्वरूप का प्रकट कर देते हैं।

राजा परीक्षित् ने श्री शुकवेद जी से कहा कि ब्रह्मा जी ने नारद को भगवान् के गुणों का वर्णन करने का आदेश दिया। क्योंकि नारद का स्वभाव तो सब को भगवद् दर्शन कराने का है। इसलिये मुझे भी उपदेश करें कि आसक्ति रहित होकर मैं श्रीकृष्ण में ध्यान लगा कर अपना शरीर छोड़ सकूं। भगवान् मैं ब्रह्मा जी को अपना स्वरूप दिखा कर सृष्टि उत्पत्ति के लिये प्रेरित किया। उन्होंने भगवान् को प्रणाम किया तथा पूर्व कल्प में जैसी सृष्टि थी वैसी ही सृष्टि का निर्माण कर दिया। इस पर नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा की स्तुति की। तब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर नारद जी को भगवान् पुराण सुनाया जिसका स्वयं भगवान् ने ब्रह्मा जी को उपदेश किया था।

श्री शुकदेव जी ने कहा कि हे राजन् इस भागवत पुराण में दस विषयों का प्रतिपादित किया गया है। वे हैं – सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, अति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। इनमें जो दसवाँ आश्रय तत्व है उसी का ठीक से निश्चय करने के लिये महात्माओं ने अन्य नौ विषयों का बड़ी सुगम रीति से वर्णन किया है। इस चराचर जगत् की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्व से प्रकाशित होते हैं वह परम ब्रह्म ही आश्रय है। शास्त्रों में उसी को परमात्मा कहा है। इस प्रकार मैंने तुम्हें भगवान् के व्यक्त और अव्यक्त रूपों को प्रकट किया है। ये दोनों ही भगवान् की माया के द्वारा रचित है।

तृतीय स्कन्ध

श्री शुकदेव जी ने कहा कि हे राजन्! जो प्रश्न तुमने मुझ से किया है वही प्रश्न विदुर जी ने मैत्रेय जी से भी किया था। जब श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत वन कर गये थे तो वे दुर्योधन के यहाँ न रह कर विदुर जी के घर बिना बुलाये ही चले गये थे। विदुर ने मैत्रेय जी से कहा कि भगवान् इस संसार में लोग सुख की इच्छा के कारण अनेकों तीर्थों की यात्रा करते हैं। परन्तु उन्हें सुख नहीं मिलता अपितु दुःख में बढ़ोतरी हो जाती है। इस पर मैत्रेय जी ने कहा कि आपने सांसारिक प्राणियों के कल्याण के लिये बड़ा अच्छा प्रश्न किया है। अतः मैं तुम्हें सृष्टि रचना के विषय में ज्ञान देता हूँ। सृष्टि रचना से पूर्व आत्माओं के आत्मा एक परमात्मा ही थे। न द्रष्टा था और न ही दृश्य था। यह द्रष्टा और दृश्य का अनुसंधान करने वाली शक्ति ही कार्य कारण रूपा माया है। इस अनिवर्चनीय माया के द्वारा ही भगवान् ने इस विश्व का निर्माण किया है। इस अव्यक्त माया से भगवान् ने महतत्त्व को प्रकट किया। इस महतत्त्व ने ही विश्व की रचना के लिये अपना रूपांतरण किया। महतत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति हुई जो भूत, इन्द्रिय और मन का कारण है। यह अहंकार–सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार का है। इस पर आत्मा का बोध कराने वाला आकाश उत्पन्न हुआ। उससे वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी उत्पन्न हुई। इस प्रकार मानव की उत्पत्ति के समय ही परमपिता ने मानव के लिये वेदों का ज्ञान प्रकाशित कर दिया।

यह विराट पुरुष ही प्रथम जीव होने के कारण समस्त जीवों का आत्मा, जीव रूप होने के कारण परमात्मा का अंश और प्रथम अभिव्यक्ति होने के कारण भगवान् का आदि अवतार है। यह सम्पूर्ण भूत समुदाय इसी में प्रकाशित हो रहा है। विदुर जी, वेद और ब्राह्मण भगवान् के मुख से प्रकट हुये। मुख से प्रकट होने के कारण ही ब्राह्मण

सब वर्गों में श्रेष्ठ और सबका गुरु है। उसकी भुजाओं से क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। भगवान् की दोनों जंघाओं से वैश्य उत्पन्न हुये। यह वर्ण अपनी वृत्ति से सब जीवों की जीविका चलाते हैं। फिर भगवान् के चरणों से सेवावृत्ति प्रकट हुई तथा शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई। ये चारों वर्ण अपनी-अपनी वृत्तियों से उत्पन्न हुये हैं और अपने-अपने कर्मानुसार अपने-अपने कार्यों का शक्तिपूर्वक निर्वाह कर रहे हैं। हे विदुर विद्वानों के मुख से भगवत् कथामृत का पान करना ही उनके कानों का सबसे बड़ा लाभ है। भगवान् तो शुद्ध बोधस्वरूप, निर्विकार और निर्गुण हैं। भगवान् का अंश यह आत्मा जो सबका स्वामी है और सर्वथा मुक्त स्वरूप है। वही दीनता और बंधन को प्राप्त है। शरीर में रहता हुआ आत्मा इन्द्रियों के वशीभूत हो अनेकों कष्टों को सहन करता है। इस प्रकार विदुर जी भगवान् की स्वतंत्रता और आत्मा की परतन्त्रता को समझने का प्रयास करते हैं।

इस स्कन्ध के नवें अध्याय में ब्रह्मा जी भगवान् की स्तुति करते हैं कि हे प्रभु! आज बहुत समय के बाद मैं आपको जान पाया हूँ। मैंने विश्व की रचना करने वाले आपके अद्वितीय रूप की शरण ली है। अतः मैं आपका उपासक हूँ। आपकी कृपा से ही मैंने आपके अद्वितीय स्वरूप के दर्शन किये हैं। आप स्वप्रकाश से ही प्राणियों के अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करते हैं। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय केवल आप की लीला है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। श्रीब्रह्मा जी को विस्मित देख कर भगवान् ने कहा कि हे वेदगर्भ! तुम विषाद के वशीभूत हो आलस्य न करो। अतः सृष्टि रचना में उद्यम से तत्पर हो जाओ। तुम्हें जो भी चाहिये वह मैं पहले ही दे चुका हूँ। अतः एक बार फिर तय करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करते हुये सब लोकों को अपने अन्तःकरण में देखो। इस प्रकार मुझ में लीन हुई प्रजा को पूर्व कल्प की भान्ति सर्ववेदमय रूप से प्रकट करो।

इसी स्कन्ध के ग्यारह अध्याय में मैत्रेय जी ने विदुर जी से काल

अवस्थाओं पर प्रकाश डाला है। दो परमाणु मिलकर एक अणु होता है। दो अणु मिलकर वायु की रचना करते हैं। इस प्रकार वायु-जल-अग्नि-पृथ्वी की रचना होती है। निमेष, उन्मेष, वेध, लव, काष्ठाका, नाडिका, पल, मुहूर्त और प्रहर होते हैं। अष्ठ प्रहर के दिन-रात, पंद्रह दिन रात का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है। छः मास का अयन और वर्ष में दो अयन उत्तरायण और दक्षिणायण होते हैं। चार युग-सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग हैं। अन्य युगों में अधर्म की वृद्धि होने के कारण उनका एक-एक चरण क्षीण होता चला जाता है। एक हज़ार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इतनी ही बड़ी रात्रि होती है। इसमें ब्रह्मा शयन करता है। रात्रि के अन्त होने पर इस लोक का कल्प आरम्भ होता है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं। एक मन्वन्तर इकहतर चतुर्युगी के बराबर होता है। यह ब्रह्मा जी की प्रतिदिन की सृष्टि है।

जिस में तीनों लोकों की रचना होती है। रात्रि के समय सारा विश्व उन्हीं में लीन हो जाता है। तब भूः, भुवः, स्वः तीनों लोक ब्रह्मा जी के शरीर में छिप जाते हैं। ब्रह्मा जी की आयु के आधे भाग को परार्द्ध कहते हैं। वर्तमान में एक परार्द्ध तो समाप्त हो चुका है और दूसरा चल रहा है।

ब्रह्मा जी सृष्टिनिर्माण में लगे थे परन्तु सृष्टि की रचना नहीं हो पा रही थी। इस पर ब्रह्मा जी का शरीर दो भागों में फल गया। उसमें एक पुरुष रूप तथा दूसरा स्त्री रूप था। पुरुष रूप से स्वायम्भुव मनु तथा स्त्री रूप से शतरूपा का जन्म हुआ। इस प्रकार उन्होंने अपने पिता से अपने करने योग्य कार्य के बारे में पूछा। इससे ब्रह्मा प्रसन्न हुये और उन्होंने स्वायम्भुव मनु और शतरूपा को पति-पत्नी बनाकर उन्हें संतानोत्पत्ति के लिये प्रेरित किया। एक बार दक्ष की पुत्री दिति ने अपने पति कश्यप से पुत्र प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की। कश्यप यज्ञ में खीर आदि की आहुतियाँ दे रहे थे। वे सूर्यास्त का समय जानकर

यज्ञशाला में ध्यानावस्थित हो कर बैठे थे तथा वे उचित समय की प्रतिक्षा में थे। परन्तु दिति ने काम के वशीभूत होकर अपने पति का वस्त्र पकड़ लिया। इस पर महर्षि कश्यप ने अपनी स्त्री की भावनाओं का आदर किया तथा उससे सहवास किया।

तब कश्यप ने दिति को बताया कि तुम्हारे गर्भ से दो बड़े ही अमंगलकारी और अधर्मी पुत्र उत्पन्न होंगे। वे बार-बार सम्पूर्ण लोकपालों को अपने अत्याचार से डराएंगे। तब उनका वध स्वयं भगवान् करेंगे। परन्तु तुम्हारे पुत्र का एक पुत्र ऐसा भी होगा जो कि धर्मपरायण होगा जो सत्पुरुषों का मान करेगा तथा जिस के यश को भगवान् के गुणों के साथ गाया जायेगा। कालान्तर में दिति के हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो पुत्र हुये जिस का वध श्रीहरि जी के कर कमलों से हो गया। इस प्रकार इस स्कन्ध में कर्दम जी की तपस्या, देवहूति के साथ उसका विवाह का वर्णन आता है। कपिल मुनि इनकी ही सन्तान है जिसने सांख्य शास्त्र की रचना की।

सांख्य शास्त्र के रचयिता भगवान् कपिल मुनि अपनी माता के संशयों का उत्तर देते हुए अष्टांग योग विधि का वर्णन करते हैं जिस प्रकार वायु और अग्नि से तपाया हुआ स्वर्ग अपने मल का त्याग कर देता है उसी प्रकार योगी भी योग द्वारा प्राण वायु को जीत लेता है। उसका मन शुद्ध हो जाता है। जब योग का अभ्यास करते हुए चित्त निर्मल और एकाग्र हो जाये तो नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमा कर भगवान् का ध्यान करे। सम्पूर्ण लोकों के आश्रय स्थान भगवान् के उदर देश में स्थित नाभि सरोवर का ध्यान करे। इसी से ब्रह्मा जी का आधार स्तम्भ कमल प्रकट हुआ है। इस प्रकार के ध्यान के अभ्यास से साधक का भगवान् में प्रेम हो जाता है। उसका हृदय भक्ति से द्रवित हो उठता है।

कपिल मुनि कहते हैं कि जब जीव को मानव शरीर में जन्म लेना होता है तो भगवान् की प्रेरणा से पूर्वकर्मानुसार देह प्राप्ति के लिए

पुरुष के वीर्य कण द्वारा स्त्री के उदर में चला जाता है। वहाँ एक रात्रि स्त्री के रज में मिल कर कलल बन जाता हैं पांच रात्रि में बुदबुद हो जाता है। दस रात्रि में बेर के समान हो जाता है। एक मास में उसका शिर निकल आता है। दो मास में उसके अंगों का विकास हो जाता है। तीन मास में स्त्री पुरुष के छिद्र हो जाते हैं। चार मास में मांस आदि सात धातुएं उत्पन्न हो जाती हैं। पांचवे मास में भूख प्यास लगने लगती है। छठे मास में झिल्ली में लिपट कर दाहिनी कोख में घूमने लगता है। वह पिंजरे में बंद पक्षी के समान पराधीन और अंगों को हिलाने में असमर्थ होता है। सातवें मास में उसमें ज्ञान शक्ति का आभास होने लगता है। जब वह माता के उदर में पड़ा भयभीत होकर दोनों हाथ जोड़ कर प्रभु की स्तुति करता है। तब दस मासा जीव अधोमुख हुआ प्रसव काल की वायु से बाहर आता है। इस समय इसकी श्वासगति रुक जाती है और पूर्व स्मृति नष्ट हो जाती है।

कपिल मुनि पुनः अपनी माता से कहते हैं जो घर में रह कर सकाम भाव से गृहस्थ के धर्म का पालन करता है। यज्ञों द्वारा श्रद्धा पूर्वक पितरों तथा देवताओं की उपासना करता है वह चन्द्रलोक में जाकर सोमपान करता है। जो विवेकी पुरुष भगवान् की प्रसन्नता के लिये उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। वे हिरण्यगर्भ प्रभु की उपासना करते हुए परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

चतुर्थ स्कन्ध

इस स्कन्ध में स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन किया गया है। स्वायम्भुव मनु के दो पुत्रों के अतिरिक्त तीन कन्याएं भी थी इनके नाम देवहूति, प्रसूति और आकूति थे। आकूति के गर्भ से विष्णु और लक्ष्मी की उत्पत्ति मानी गई। देवहूति का विवाह कर्दम मुनि के साथ हुआ। जिनके कपिल मुनि उत्पन्न हुये जो सांख्य शास्त्र के रचयिता है। महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया से दत्तात्रेय, दुर्वासा और

चन्द्रमा नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुये। ये बड़े प्रतापी तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव के समान तेजस्वी थे। अंगिरा ऋषि की पत्नी श्रद्धा ने सिनीवाली, कुहू, राका और अनुभूति इन चार कन्याओं को जन्म दिया। इनके दो पुत्र उतथ्य तथा बृहस्पति भी उत्पन्न हुये। पुलस्त्य ऋषि के महर्षि अगस्त्य और महातपस्वी विश्रवा नामक दो पुत्र हुये। विश्रवा मुनि के इडविडा के गर्भ से यज्ञराज कुबेर का जन्म हुआ। उनकी दूसरी पत्नी केशिनी से रावण और कुम्भकरण उत्पन्न हुये तथा तीसरी पत्नी राका से विभीषण का जन्म हुआ। वशिष्ठ की पत्नी ऊर्जा से चित्रकेतु आदि सात महर्षियों का जन्म हुआ। क्रतु की पत्नी क्रिया ने ब्रह्मतेज से देदीप्यमान होकर साठ हज़ार ऋषियों को जन्म दिया।

ब्रह्म जी के पुत्र दक्ष प्रजापति ने मनु नन्दिनी से विवाह किया तथा सोलह कन्याएं उत्पन्न कीं। दक्ष ने उनमें से तेरह धर्म को एक अग्नि को, एक समस्त पितरगण को तथा एक संसार का संहार करने वाले भगवान् शंकर को दी। अग्नि देव की पत्नी स्वाहा ने अग्नि के ही अभिमानी तीन पुत्रों को जन्म दिया। ये तीनों ही हवन किये हुये पदार्थों का भक्षण करने वाले हैं। इन तीनों ने पैंतालीस प्रकार की अग्नियाँ उत्पन्न की।

एक समय प्रजापतियों के यज्ञ में सब बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि आदि आये हुये थे। उसी समय दक्ष प्रजापति ने उस समय में प्रवेश किया। वे अपने तेज से सूर्य के समान प्रकाशमान थे। महादेव को छोड़ कर सभी सभासद् उनके अभिवादन में आसन छोड़ कर खड़े हो गये। वे ब्रह्मा जी को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से आसन पर विराजमान हो गये। वे महादेव शंकर की इस अशिष्टता से क्रोधित हो उठे और उन्हें भला बुरा कहा तथापि शिव ने उनका कोई प्रतिकार न किया। इससे वे और क्रोधित हो गये और दक्ष प्रजापति ने हाथ में जल लेकर उन्हें शाप दे दिया कि उन्हें देवताओं के साथ यज्ञ का भाग प्राप्त न हो। इस पर शंकर के अनुयायी नन्दीश्वर ने क्रोध में भर कर दक्ष प्रजापति को शाप दे दिया कि जो भगवान् शंकर से द्वेष करता है वह

दक्ष तथा उसके साथी तत्त्वज्ञान से रहित हो जाएं ।

नन्दीश्वर के मुख से ब्राह्मण कुल के लिये शाप सुनकर उसके बदले में भृगु जी ने शाप दे डाला । जो लोग शिवभक्त है तथा उन भक्तों के अनुयायी हैं वे सत् शास्त्रों के विरुद्ध आचरण करने वाले तथा पाखण्डी बनो । ब्रह्मा जी ने दक्ष को प्रजापतियों का अधिपति बना दिया । इससे उसका गौरव बढ़ गया । उसने शंकर आदि ब्रह्मनिष्ठों को यज्ञभाग न देकर उनका तिरस्कार करते हुए वाजपेय यज्ञ किया । सभी देवतागण अपनी पत्नियों सहित इस यज्ञ में पधारे । आकाश मार्ग से जाते हुये देवता इस यज्ञ की चर्चा करते जाते थे । जिससे सती के मन में भी यज्ञ में शामिल होने की इच्छा उत्पन्न हुई ।

भगवान् शंकर ने उन्हें ऐसा करने के लिये मना किया कि वहाँ पर जाने से तुम्हारा सम्मान नहीं होगा । परन्तु आत्मीय जनों के प्रेम से वशीभूत हो सती अपने पिता के यज्ञ में शामिल होने चली दी । दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्री का कोई आदर नहीं किया और न ही भगवान् शंकर के लिये यज्ञ में कोई अंश दिया । तब उसने क्रोध में आकर पिता से कहा कि तुम जिस भगवान् शंकर का विरोध करते हो वे तो परम आदरणीय हैं । वे निर्वैर हैं, वे सब के पूजनीय हैं । यदि आप ऐसे ईश्वर का अपमान करते हैं तो मुझे अपने आप पर लज्जा आती है । क्योंकि यह शरीर ऐसे नास्तिकों से उत्पन्न हुआ है । अतः मैं अभी इस शरीर का परित्याग करती हूँ । ऐसा कह कर वह यज्ञ के दक्षिण भाग में बैठ गयी और उसने प्राण वायु को ऊपर उठा कर बाहर फेंक दिया तथा उसका शरीर योग अग्नि में जल उठा । इससे सब ओर हाहाकार मच उठा । महर्षि नारद के मुख से जब शिवजी ने यह समाचार सुना तो वे बड़े क्रोधित हुये । उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी और पृथ्वी पर पटक दिया । इससे एक भयंकर आकृति का पुरुष उत्पन्न हुआ उसे शिवजी ने कहा कि दक्ष और उसके यज्ञ को नष्ट कर दे । इस प्रकार यज्ञ को नष्ट कर दिया गया तथा दक्ष प्रजापति का सिर जला दिया

गया और ऋत्विजों को मार मार कर भगा दिया। ऋत्विज जान बचा कर ब्रह्मा जी के पास पहुँचे। उन्होंने उनसे क्षमा मांगने के लिये कहा। ब्रह्मा जी उन्हें शिवजी के पास ले गये। उनकी स्तुति करने उपरांत क्षमा मांगी और यज्ञपूर्ण करने का अनुरोध किया। यज्ञ पूर्ण होने पर जो भाग शेष रहे वह सब आपका भाग है।

महादेव ने कहा कि अपराधियों को उनकी भूल का थोड़ा सा यह दण्ड दिया है। दक्ष प्रजापति का सिर जल गया है। अतः उसे बकरे का सिर लगा दिया जाए। जो घायल हुए हैं वे अश्विनीकुमारों के हाथों से कार्य करें। यज्ञ सम्पन्न होने पर दक्ष ने महादेव से कहा, मैं आपका अपराधी हूँ। अतः मुझे क्षमा करें। उन्होंने महादेव की पुनः स्तुति की जिससे नारायण प्रकट हुए। उन्होंने कहा कि मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हूँ। इन जगत् का ईश्वर हूँ। सभी प्राणियों का आत्मा हूँ। इस चराचर पदार्थों का स्वामी हूँ। जगत् का नियन्ता हूँ।

इस स्कन्ध के अष्टम अध्याय में महारानी शतरूपा और स्वायम्भुव का उल्लेख आता है। इनके दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद हैं। ये दोनों संसार की रक्षा में तत्पर रहते थे। उत्तानपाद की दो पत्नियां – सुनीति और सुरुचि थी। परन्तु राजा को सुरुचि अधिक प्रिय थी। सुरुचि का उत्तम और सुनीति का ध्रुव उत्पन्न हुआ। एक दिन उत्तम राजा की गोदी में बैठे थे। ध्रुव भी बैठना चाहते थे। परन्तु सुरुचि ने ध्रुव को बहुत कटु शब्द बोले जिससे वह रोता हुआ अपनी माता के पास गया। माता ने उसे आश्वासन दिया और कहा कि भगवान् की भक्ति में लगा जा। तुम्हारे सब दुःख दूर हो जाएंगे। यह सुनकर वह बालक नगर छोड़ कर जंगल में चला गया। वहाँ उसका सम्पर्क महर्षि नारद से हुआ। उन्होंने उसे समझाया पर वह न आना। अन्त में नारद ने उसे भगवान् की उपासना का मार्ग बताया। उसे योग विद्या दी तथा उसे भगवान् के स्वरूप से अवगत कराया। फिर उसे 'ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय' का मंत्र दिया।

महर्षि नारद के कथनानुसार बालक ध्रुव अपने अटल स्वभाव से प्रभुभक्ति में लग गया। बिना कुछ खाये, पीये लम्बे समय तक भक्ति करने पर उसे भगवान के दर्शन हुये। भगवान् ने उन्हें आशीर्वाद दिया तथा उसे ध्रुव लोक प्रदान किया। उसे कहा कि जब तेरा पिता तुझे राज्य देगा तो तुम 36,000 वर्ष तक पृथ्वी का पालन करोगे। तुम अनेकों यज्ञों द्वारा मेरा यजन करोगे। भगवद् दर्शन करने पर ध्रुव वापिस अपनी नगरी में आये। वहाँ राजा ने उसका बड़ा सत्कार किया। उसके भाई उत्तम की यक्षों ने हत्या कर दी। इस प्रकार ध्रुव ने यक्षों के विरुद्ध युद्ध का बिगुल बजा दिया। अपने दादा स्वायम्भुव मनु के समझाने पर ध्रुव ने युद्ध को विराम दे दिया। ध्रुव ने यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करके पाप को क्षय करते हुए 36,000 वर्ष तक पृथ्वी का शासन किया।

महाराज ध्रुव के चले जाने पर पृथ्वी पर कोई राजा न रहा। चारों ओर अराजकता फैल गई। चोरों और डाकुओं का भय समाज में पनप गया। तब मुनियों ने माता सुनीथा की सम्मति से वेन को राजा बना दिया। यद्यपि सभासद् इसे पसन्द नहीं करते थे। राजा बन कर वेन उद्दण्ड हो गया और स्वयं को भगवान् कहने लगा। यज्ञादि अनुष्ठान को भी नष्ट करने लगा। इससे महर्षियों में क्रोध उत्पन्न हुआ और वे वेन से मिलने चले। जब वेन ने उन पर उद्दण्डता दिखायी तो ऋषियों के क्रोध के कारण उसकी मृत्यु हो गई। वेन की माता ने मंत्रों के प्रभाव से शव की रक्षा की। राजा विहीन राज्य में पुनः अराजकता उत्पन्न हो गई। इससे ब्राह्मणों ने वेन की भुजाओं का मन्थन किया तब उससे एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण इस जोड़े को भगवान् का अंश जान कर बड़े प्रसन्न हुये। पुरुष का नाम पृथु तथा स्त्री का नाम अर्चि रखा गया।

वेदवादी ब्राह्मणों ने महाराज पृथु के अभिषेक का आयोजन किया। उसे राजसिंहासन पर बैठाया गया तथा प्रजा का रक्षक घोषित

किया। इन दिनों पृथ्वी अन्नहीन हो गई थी। पृथु ने इस पर विचार किया और पृथ्वी को ही दोषी माना। राजा पृथु ने क्रोधित होकर धनुष उठाया और पृथ्वी को मारने लगा। पृथ्वी जान बचा कर भागने लगी। परन्तु पृथु अत्यंत शक्तिशाली राजा थे। अतः पृथ्वी ने राजा के आगे समर्पण कर दिया। राजा पृथु ने पृथ्वी से कहा कि तुम उस गाय के समान हो जो हरी-हरी घास तो खा लेती है। परन्तु दूध नहीं देती।

इस पर पृथ्वी ने राजा पृथु से क्षमा मांगी और कहा कि आप सर्वेश्वर हैं। प्रभु अपना क्रोध शांत कीजिये। तत्त्वदर्शी मुनियों ने इस लोक और परलोक में मनुष्यों के कल्याण के लिये कृषि, अग्निहोत्र आदि बहुत से उपाय निकाले हैं। उन उपायों को जो आज भी अपनाता है वह अवश्य ही अभीष्ठ फल प्राप्त कर लेता है। परन्तु जो अज्ञानी किसी भी प्रकार का प्रयत्न नहीं करता वह निष्फल हो जाता है। राजा लोगों ने मेरा पालन और आदर करना छोड़ दिया है। इस कारण मैंने सब औषधियों को अपने में छिपा लिया है। अधिक समय हो जाने के कारण वे धान्य मेरे उदर में जीर्ण हो गये हैं। अतः तत्त्वदर्शी मुनियों के अनुसार मुझे समतल करना होगा जिससे इन्द्र द्वारा बरसाया गया जल मुझ पर सर्वत्र बना रहे। मेरे भीतर की आर्द्रता सूखने न पाये।

ब्रह्मावर्त क्षेत्र में पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञों की दीक्षा ली। इस पर इन्द्र ने विचार किया कि इस के कर्म मुझ से बढ़ जायेंगे। इसलिये यज्ञों में विघ्न डालने की युक्ति खोजने लगे। जिस समय महाराज पृथु सौवें यज्ञ द्वारा यज्ञपति भगवान् की आराधना कर रहे थे तो इन्द्र ने गुप्त रूप से यज्ञ का घोड़ा हर लिया। अत्रि मुनि ने जब यह देखा तो उसने पृथु कुमार से घोड़ा लाने के लिये कहा। पृथु कुमार ने इन्द्र का पीछा किया तो इन्द्र घोड़ा छोड़ कर अन्तर्ध्यान हो गये। इन्द्र के इस कुकृत्य से पृथु

को बड़ा क्रोध आया और उसने इन्द्र को मारने के लिये अपना धनुष उठाया तब ऋत्वियों ने उन्हें ऐसा करने से रोका और यज्ञ दीक्षा का स्मरण कराया ।

पंचम स्कन्ध

पंचम स्कन्ध में स्वायम्भुव मनु ने अपने पुत्र प्रियव्रत के सर्वगुण सम्पन्न जानकनर राज्य शासन की आज्ञा दे दी । परन्तु प्रियव्रत ने उसे स्वीकार न किया । तब ब्रह्मा जी ने उसे समझाया कि हमें श्रीहरि विष्णु की आज्ञा का पालन करना चाहिये । हमारे गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वे हमें जिस भी योनि में डालते हैं उसी को स्वीकार करके हम वहाँ सुख-दुःख भोगते हैं । हमें उनकी इच्छा का अनुसरण करना होता है । ब्रह्मा जी के इस प्रकार उपदेश करने पर प्रियव्रत ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया । इस प्रकार मनु जी ने प्रियव्रत को समस्त भू-मण्डल की रक्षा का भार सौंप दिया । उनका हृदय बड़ा शुद्ध था तथा वे बड़ों का सम्मान करने वाले थे । उन्होंने विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से विवाह किया । इससे उनकी दस सन्तानें हुई । इनकी दूसरी पत्नी से तीन सन्तानें हुई । राजा प्रियव्रत ने एक अबुर्द वर्षों तक पृथ्वी पर शासन किया । उन्होंने अपने रथ से सम्पूर्ण पृथ्वी को सात महासागरों और सात महाद्वीपों में बाँट दिया । इसके बाद उन्होंने अपना जीवन तपस्या में लगा दिया । तब उनके पुत्र आग्नीध्र उनकी आज्ञा का अनुसरण करते हुय जम्बू द्वीप की प्रजा का धर्मानुसार पालन करने लगे । एक बार वे पितृलोक की कामना के लिये पुत्र प्राप्ति हेतु श्रीब्रह्म जी की आराधना करने लगे । ब्रह्मा जी ने उनकी अभिलाषा जान ली और पूर्वचिति नाम की अप्सरा को उसके स्थान पर भेज दिया । तपस्वी आग्नीध्र उसे देखकर उस पर आसक्त हो गये और

पूर्वचिति से विवाह कर उसे राजभवन में ले आये। वहाँ उनके नौ पुत्र हुये। उन्होंने समस्त भूमण्डल को नौ भागों में बाँट दिया। आग्नीध्र दिन-प्रतिदिन भोगों को भोगते हुये भी अतृप्त ही रहे।

आग्नीध्र के पुत्र नाभि ने भी पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु भगवान् यज्ञ पुरुष का यजन किया। तब भगवान् साक्षात् प्रकट हुये और उन्हें आशीर्वाद दिया। श्रीहरि के आशीर्वाद से उसके यहाँ पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम ऋषभ रखा गया। वे साक्षात हरि ही थे। वे धर्म पारायण थे और लोक हित के लिये उन्होंने कुछ काल तक गुरुकुल में वास किया। वहाँ से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश की आज्ञा ली। तब उन्होंने देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती से विवाह किया तथा अपने ही समान सौ पुत्रों को जन्म दिया। उनमें भरत जी सब से बड़े और सब से अधिक गुणवान थे। इसी के नाम पर ब्रह्मवर्त देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भगवान् ऋषभ देव यद्यपि इन्द्रादि लोकपालों के भी भूषण थे। फिर भी वे अपने आचरण एवं ईश्वरीय भावों को छिपाये रहते थे। अन्त में उन्होंने देहत्याग की विधि को योगियों को सिखाने के लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा। वे वासनाओं की अनुवृत्ति से छूट कर बला बिखेरे हुए बांस के वन में भ्रमण कर रहे थे। इसी समय झंझावात से बांसों के घर्षण से प्रबल दावाग्नि धधक उठी। उसने सारे वन को अपनी लाल-लाल लपटों में लेकर ऋषभ देव सहित भस्म कर दिया। भरत को हरिण शावकों से अत्यंत प्रेम था। वह हरिण शावक को अपने साथ रखते। जब शावक थक जाता तो वह उसें अपनी गोद में ले लेते, उसे प्यार करते। उनका सम्पूर्ण जीवन हरिण शावकमय बन गया। अब उन्होंने अपने हरिण शावकमय जीवन का परित्याग करने की सोची तो उन्होंने अपने शरीर को जल में डुबो कर मृग शरीर को छोड़ दिया।

पुनः अंगीरस गोत्र में श्रेष्ठ ब्राह्मणों के घनर में राजर्षि शिरोमणि भारत ने जन्म लिया। भगवान् की कृपा से इस जन्म में भी उन्हें पूर्व

जन्म का स्मरण था। वे सदा भगवान् के चरणों में अपने मन को लगाते और पागलों जैसा व्यवहार करते। पिता चाहते थे कि उसका वेदाध्ययन आरम्भ करा दिया जाए किन्तु चार मास पढ़ने के बाद भी उन्हें गायत्री अच्छी प्रकार कंठस्थ न हो सकी। वे सर्दी, गर्मी, वर्षा में ऐसे ही भूमि पर पड़े रहते। इससे उनके शरीर पर मैल जम गई, उनका यज्ञोपवीत भी मैला हो गया।

एक समय एक डाकुओं के सरदार ने पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु भद्रकाली को मनुष्य की बलि देने का संकल्प लिया। वह जिस पशु को बलि हेतु पकड़ कर लाया था वह रात्रि के अंधेरे में भाग गया था। सेवकों ने उसे चारों ओर ढूंढा। परन्तु वह कहीं भी नहीं मिला। देवयोग से सेवकों की नजर इस ब्राह्मण कुमार पर पड़ी। उन्होंने इस ब्राह्मण कुमार को पकड़ा और रस्सियों से बांध कर चण्डिका के मन्दिर में ले आये। डाकुओं के सरदार ने उसे स्नान करवा कर उसका विधिपूर्वक अभिषेक किया। चन्दन, माला, तिलक आदि से विभूषित कर उसे अच्छी तरह भोजन कराया। इस प्रकार पुरोहित बने दस्युराज ने देवी मंत्रों से अभिमंत्रित खड्ग उठाया। उस ब्राह्मण कुमार की बलि देने ही वाले थे कि मूर्ति से भद्रकाली का ब्रह्मतेज प्रकट हुआ और एक अट्टहास के साथ उसी अभिमंत्रित खड्ग से पुरोहित बने दस्युराज को हमेशा के लिये मौत की नींद सुला दिया। सत्य ही कहा है कि जो लोग राग द्वेष को छोड़ अपने आत्मा को श्रीहरि की भक्ति में लगा देते हैं वे सब बंधनों को काट डालते हैं। भगवान् श्रीहरि उनकी बुद्धि को निर्मल बना देते हैं।

राजर्षि भरत के पवित्र गुण और कर्मों की भक्त जन भी प्रशंसा करते हैं। उनका यह चरित्र बड़ा कल्याणकारी है। लोक में सुयश बढ़ाने वाला अन्त में मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है जो पुरुष इसे सुनता और सुनाता है उसकी सब कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। राजर्षि भरत से सुमति उत्पन्न हुआ, सुमति से देवताजित, देवताजित से प्रतीह, प्रतीह से भूमा, भूमा से उद्गीथ, उद्गीथ से विभु नामक पुत्र उत्पन्न

हुआ। विभु से राजर्षि प्रवर गय का जन्म हुआ। ये जगत् की रक्षा के लिये सत्गुणों को स्वीकार करने वाले साक्षात् भगवान् विष्णु के अंश माने जाते हैं। महाराज गद्य ने प्रजा पालन हेतु अनेकों यज्ञों का अनुष्ठान किया। वे साक्षात् भगवान् की कला ही थे। उन्हें कोई कामना न थी फिर भी वेदोक्त कर्मों ने उनको सब प्रकार के भोग दिये। इन्द्र ने उनके यज्ञ में सबसे अधिक सोमपान किया था।

महाराज गय के चित्ररथ, चित्ररथ से सम्राट्, सम्राट् से मरीचि, और मरीचि से बिन्दुमान उत्पन्न हुये। बिन्दुमान से मधु, मधु से वीरव्रत, वीरव्रत के मन्थु, मन्थु के भौवन, भौवन के त्वष्टा, त्वष्टा के विरज और विरज के शतजित् आदि सौ पुत्र हुये। जिस प्रकार भगवान् विष्णु देवताओं की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार प्रियव्रत वंश में सबसे पीछे उत्पन्न विरज अपने सुयश से अपने वंश को विभूषित करते हैं।

इस स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में भारतवर्ष की पुण्य भूमि का वर्णन करते हुए श्री शुकदेव जी कहते हैं कि भारत की यह घटा बड़ी पुण्य है जिस पर अनेक सुन्दर पर्वतों और नदियों का विस्तार है। देवता भी इस भूमि का गुणगान करते हैं तथा यहाँ पर जन्म लेने के लिये लालायित हैं। भारतवर्ष की पुण्य भूमि पर उत्पन्न हुये मनुष्यों ने ऐसा कौन सा कार्य किया जिससे स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो गये। इस परम सौभाग्य के लिये तो देवता भी तरसते हैं।

जब भारतवासी यज्ञों में भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम मंत्र विधि द्वारा भिन्न-भिन्न द्रव्यों को रखते हैं तो सब की कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीहरि प्रसन्न होकर उस हवि का ग्रहण करते हैं। तब भगवान् श्रीहरि उन्हें इष्टवर प्रदान करते हैं। यहाँ के वातावरण और भूखण्डों के वर्णन में पर्वतों, नदियों, जंगलों तथा अनेकों प्रदेशों का उल्लेख मिलता है। अनेकों द्वीपों तथा सागरों से सजे भूमण्डल की विशेषता सर्वश्रेष्ठ दर्शायी गई है। सूर्य के रथ और उसकी गति के बारे में उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति

एवम् गति की जानकारी मिलती है । भगवान् सूर्य लोकों के आत्मा हैं । वे पृथ्वी और द्युलोक के मध्य बारह मासों को भोगते हैं । ये संवत्सर के अवयव हैं और राशियों के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

प्रत्येक मास चन्द्रमान से शुक्ल और कृष्ण का, पितृमान से रात और दिन का तथा सौरमान से सवा दो नक्षत्रों का बताया जाता है । संवत्सर का छठा भाग ऋतु कहलाता है। संवत्सर के दो भाग अयन–उत्तरायण और दक्षिणायन कहलाते हैं । चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों की गति का वर्णन भी आता है । ध्रुव लोक इन सब से ऊपर है । अतः सभी का आधार स्तम्भ है । सूर्य और चन्द्र लोक के नीचे राहु है । इसी प्रकार अतल, वितल और सुतल लोक हैं । राजा बलि को सुतल लोक का ऐश्वर्य प्राप्त हो गया था । सुतल के नीचे तलातल, तलातल के नीचे रसातल तथा इसके नीचे पाताल हैं । यहाँ पर बड़े-बड़े फनों वाले नाग रहते हैं । उन नागों की दमकती मणियाँ अपने प्रकाश से पाताललोक का सार अंधकार नष्ट कर देती हैं ।

इस प्रकार मनुष्य अपने सत्व, रज तथा तमोगुणों के कारण अच्छे बुरे कर्म करता हुआ भिन्न-भिन्न लोकों एवम् भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेता है । कर्म करते हुये उसकी श्रद्धा भी अलग-अलग होती है । जो मनुष्य इस लोक में पंच महायज्ञ किये बिना और दूसरों को कुछ दिये बिना स्वयं खा लेता है । उसे कौए के समान कहा गया है । जो प्राणी अपने धर्म का पालन नहीं करता उसे वैतरणी नदी में पटक दिया जाता है । जो पुरुष यज्ञों में पशु आदि की बलि देते हैं उसे नरक में डाल कर अत्यंत पीड़ा दी जाती है । अतः यमलोक में इसी प्रकार के सैकड़ों हज़ारों नरक हैं । धर्म पारायण जीव अपने-अपनी कर्मों द्वारा स्वर्गादि में जाते हैं । धर्म और अधर्म दोनों के विलक्षण मार्ग हैं ।

अतः योगी को चाहिये कि भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के रूपों का श्रवण करके पहले स्थूल रूप से चित्त को स्थिर करे ।

फिर धीरे-धीरे वहाँ से हटा कर उसे सूक्ष्म में लगा दे। यही भगवान् का अति सूक्ष्म रूप जीव समुदाय का आश्रय स्थल है। यही मुक्ति का एकमात्र का आधार है।

षष्ठ स्कन्ध

प्रथम अध्याय में राजा परीक्षित् श्री शुकदेव मुनि जी से कहते हैं कि आप निवृत्ति मार्ग का वर्णन कर चुके हैं जिससे जीव ब्रह्मलोक जाता है और ब्रह्मा के साथ मुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त आपने स्वर्गादि लोकों का भी वर्णन किया है जिससे बार-बार जन्म-मरण के चक्र में आना पड़ता है। अधर्म से नरक की प्राप्ति होती है। अतः नरकों में न जाना पड़े इसके लिये मुझे उपदेश करें। इस पर शुकदेव जी कहते हैं कि वास्तव में कर्म के द्वारा कर्म का नाश नहीं होता। क्योंकि कर्म का अधिकारी अज्ञानी है। अज्ञान रहते हुये पापवासनाएँ नहीं मिट सकती। इसलिये सच्चा प्रायश्चित तत्त्वज्ञान है। जो पुरुष सुपथ्य का सेवन करते हैं उसे रोग अपने वश में नहीं कर सकते। जो नियमों का पालन करता है वह तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। भगवान् की शरण में रहने वाले भक्तजनों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इस विषय में भगवान् विष्णु और यमराज के दूतों का संवाद आता है जो कि इस प्रकार से है।

कान्यकुब्ज नगरी में एक दासीपुत्र ब्राह्मण रहता था। उसका नाम अजामिल था। दासी के संसर्ग से उसका सदाचार नष्ट हो गया था। वह पतित कभी राहगीरों को लूटता, किसी के धन को चुरा लेता तथा किसी को जुए में हरा देता। अन्य प्राणियों को वह बहुत सताता। उसकी आयु का बड़ा भाग बीत गया था। उसके दस बच्चे थे। सबसे छोटे का नाम नारायण था। अजामिल उससे बहुत प्यार करता था। वह उसके स्नेह बंधन में बंध गया था। उस मूढ़ को यह भी पता न चला कि मृत्यु का समय नजदीक आ गया है। वह नारायण के बारे में

विचारने लगा। अजामिल ने देखा कि उसे ले जाने तीन यमदूत आयें हैं। उनके हाथों में फांसी है। उन्हें देख कर वह व्याकुल हो उठा। उसने बड़े जोर से आवाज़ लगाई-नारायण! तभी नारायण के पार्षद वहाँ उपस्थित हो गये। उन्होंने यमराज के दूतों को रोक दिया। इस पर यमराज के दूतों ने पूछा—तुम कौन और किस के दूत हो? भगवान् के पार्षदों ने कहा यदि तुम सचमुच धर्मराज के दूत हो तो धर्म का लक्षण और तत्व बताओ। इस पर यमदूतों ने कहा—

वेदों में जिन कर्मों का विधान किया है वह धर्म है और जिसका निषेध किया है वह अधर्म है। वेद स्वयं भगवान् के स्वरूप हैं। पाप कर्म करने वाले सभी मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार दण्डनीय होते हैं। हमारे स्वामी अजन्मा भगवान् सर्वज्ञ यमराज सबके अन्तःकरण में विराजमान हैं। इसलिये वे अपने मन से ही सब पूर्ण कर्मों को जान लेते हैं।

पहले यह अजामिल बड़ा शास्त्रज्ञ था। शील, सदाचार और सद्गुणों का खजाना था। ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, मन्त्रवेता और पवित्र भी था। इसने गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध पुरुषों की सेवा की थी। एक दिन यह अपने पिता के आदेश से वन गया तथा वहाँ से समिधा और कुशा ले कर लौटा। लौटते हुये इसे एक भ्रष्ट शूद्र जो बहुत कामी और निर्लज्ज और शराब पीकर वेश्या के साथ विहार कर रहा था। वेश्या भी शराब पीकर मतवाली हो रही थी। अजामिल भी उसे देखकर मोहित और काम के वश हो गया। उस वेश्या को निमित्त बनाकर काम-पिशाच ने अजामिल के मन को ग्रस लिया। इसकी चेतना नष्ट हो गई और यह मन ही मन वेश्या का चिन्तन करने लगा। उसने अपने पिता की सारी सम्पत्ति उस वेश्या पर लुटा दी। वेश्या ने उसके मन को इतना लुभा दिया कि उसने स्व पत्नी का भी त्याग कर दिया। अतः यह पापी है। इसलिये इसे यमराज के पास ले जाएंगे। वहाँ यह अपने पापों का दण्ड भोगेगा।

यह सुनकर भगवान् के पार्षदों ने कहा—यह बड़े आश्चर्य की

बात है कि धर्मज्ञों की सभा में अधर्म प्रवेश कर रहा है। जो प्रजा के रक्षक हैं यदि प्रजा के प्रति विषमता का व्यवहार करने लगे तो प्रजा किसकी शरण लेगी। सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण लोग वैसा ही व्यवहार करते हैं। अतः यमदूतो ! इसने अपने सभी पापों का प्रायश्चित कर लिया है। इसने भगवान् के मोक्षप्रद नाम का उच्चारण किया है। क्योंकि भगवद् नामों से मानव की बुद्धि भगवान् के गुण और स्वरूप में रम जाती है। इससे उनका चित्त शुद्ध हो जाता हैं शुकदेव जी कहते हैं कि इस प्रकार भगवान् के पार्षदों ने भागवत् धर्म को सुना दिया और अजामिल को मृत्यु के मुख से बचा लिया।

यम के दूतों ने वापिस लौट कर पूरा वृतान्त धर्मराज से कहा यदि कर्मों का दण्ड देने वाले अनेक शासक होंगे तो कर्मों की व्यवस्था कैसे रहेगी। चार सिद्ध हमारे पाशों को बलपूर्वक काट कर हमसे पापी को छुड़ा कर ले गये। इस पर यमराज ने अपने दूतों से कहा—मेरे अतिरिक्त एक और ही चराचर जगत् का स्वामी है। उन्हीं में यह सम्पूर्ण जगत् सूत में वस्त्र के समान ओतप्रोत है। उन्हीं के अंश ब्रह्मा, विष्णु और शिव इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हैं। सभी जीव कर्म बन्धन में बंधे हुये उन्हें अपना सर्वस्व भेंट कर रहे हैं। वे प्रभु सब के स्वामी और स्वयं परम स्वतंत्र हैं। स्वयं भगवान् ने ही धर्म की मर्यादा का निर्माण किया है। उसे न तो ऋषिगण, न देवता और न सिद्ध जन ही जानते हैं। उनके द्वारा निर्मित भागवत धर्म परम शुद्ध और अत्यंत गोपनीय है। उसे जानना अत्यंत कठिन है। जो उसे जान लेता है वह भगवत्स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यम दूतों ने धर्मराज के मुख से भगवान् की महिमा सुनी तो उनके आचार्य की सीमा न रही।

इस स्कन्ध के छठे अध्याय में दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं के वंश का विवरण मिलता है। दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी असिक्नी के

गर्भ से साठ कन्याएं उत्पन्न की। ये सभी कन्याएं पिता दक्ष से बहुत प्यार करती थीं। दक्ष प्रजापति ने उनमें से दस कन्याएं धर्म को, तेरह कश्यप को, सताईस चन्द्रमा को, दो भूत को, दो अंगिरा को और शेष चार तार्क्ष्य नामधारी कश्यप को ब्याह दी। इन्हीं की वंश परम्परा तीनों लोकों में फैली हुई है। इसी वंश परम्परा की शर्मिष्ठा ने नहुषनन्दन ययाति से विवाह किया। जो परम प्रतापी राजा थे।

इसी प्रकार अदिति की वंश की परम्परा का वर्णन करते हुए अदिति के बारह पुत्रों का उल्लेख मिलता है। यही बारह आदित्य कहलाये। विवस्वान की पत्नी संज्ञा के गर्भ से वैवस्वत मनु एवं यम यमी का जोड़ा उत्पन्न हुआ। संज्ञा ने ही घोड़ी का रूप धारण करके भगवान् सूर्य के द्वारा भूलोक में दोनों अश्विनी कुमारों को जन्म दिया। विवस्वान् की दूसरी पत्नी छाया थी। उससे शनैश्चर और सावर्णि मनु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। दैत्यों की छोटी बहन रचना त्वष्टा की पत्नी थी, उससे विश्वरूप उत्पन्न हुये। यद्यपि विश्वरूप दैत्यों के भानते थे, फिर भी उन्होंने युद्ध में देवताओं का साथ दिया।

असुरों से प्रताड़ित होकर देवराज इन्द्र अपनी सुरक्षा हेतु ब्रह्मा जी के पास गये। ब्रह्मा जी ने उन्हें विश्वरूप के पास भेज दिया। देवताओं ने कहा–बेटा विश्वरूप! तुम्हारा कल्याण हो। हम तुम्हारे आश्रम पर अतिथि रूप में आये हैं। हम तुम्हारे पितर हैं। इस समय शत्रुओं ने हमें जीत लिया है। तुम ब्रह्मनिष्ट ब्राह्मण हो अतः आप हमारी पुरोहिती करें। तब विश्वरूप ने कहा कि पुरोहिती का काम ब्रह्मतेज को क्षीण करने वाला है। इसलिये धर्मशील महात्माओं ने उसकी निन्दा की है। फिर भी मैं आपका सेवक हूँ। इस प्रकार वे देवताओं की पुरोहिती करने लगे। यद्यपि शुक्राचार्य ने असुरों की सम्पत्ति की रक्षा कर दी थी फिर भी विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से उनसे सम्पत्ति छीनकर देवराज इन्द्र को दिला दी। विश्वरूप

ने देवराज इन्द्र को नारायण कवच का उपदेश दिया था। यह नारायण कवच ''ॐ नमो नारायणाय'' तथा ''ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'' इन मंत्रों को हृदय में धारण करने से प्राप्त होता है। जो पुरुष इस नारायण कवच को अपने हृदय में धारण कर लेता है वह अपने नेत्रों से जिसे भी देखता है। वह समस्त भय से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार विश्वरूप की सहायता से देवताओं को उनका स्थान प्राप्त हो गया। विश्वरूप की माता आसुरी कुल से थी। इसलिये वे यज्ञ में देवताओं के साथ-साथ आसुरों को भी उनका भाग दे दिया करते थे। यह देवराज इन्द्र को उचित नहीं लगता था। इसलिए उसने अपने अस्त्र-शस्त्र से विश्वरूप का सिर काट दिया। विश्वरूप के पिता त्वष्टा को इससे बड़ा दुःख हुआ। उसने यज्ञ रचाकर इन्द्र को मारने वाले पुत्र की कामना की जिससे याज्ञिक अग्नि से वृत्रासुर का जन्म हुआ। वह बहुत शक्तिशाली था। अतः उसने सभी देवताओं को परास्त कर स्वर्ग से गिरा दिया। इस पर इन्द्र ने भगवान् की स्तुति की। भगवान् के प्रकट होने पर उन्होंने दधीचि से सहायता प्राप्त करने का आदेश दिया। दधीचि का शरीर तप और उपासना के कारण अत्यंत दृढ़ हो चुका था। दधीचि ऋषि धर्म के परम मर्मज्ञ हैं। अश्वनीकुमारों के मांगने पर वे तुम लोगों को अपने शरीर के अंग अवश्य दे देंगे। इस प्रकार विश्वकर्मा से उन अंगों से आयुध तैयार करवा लेना। देवराज मेरी शक्ति से उस आयुध से तुम वृत्रासुर का सिर काट लोगे और तुम्हें सारी सम्पत्ति फिर प्राप्त हो जाएगी।

इस प्रकार ऋषि दधीचि की अस्थियों से विश्वकर्मा द्वारा आयुध तैयार किया गया। तब देवराज इन्द्र उस आयुध से सुसज्जित हो वृत्रासुर पर आक्रमण करने चल पड़ा। देवताओं की सेना ने आसुरों का ऐसा संहार किया कि वे पीठ दिखा कर भागने लगे। वृत्रासुनर के कहने पर भी वे नहीं रुके। इस पर वृत्रासुर ने इन्द्र पर आक्रमण कर उसके वाहन ऐरावत को जख्मी कर दिया। इन्द्र ने ऐरावत को फिर से

ठीक करके इन्द्र ने वृत्रासुर की बायीं भुजा काट डाली। फिर दायीं भुजा काट डाली। वृत्रासुर ने इन्द्र को अपने मुँह में ले लिया। इन्द्र नारायण के उपासक होने के परिणामस्वरूप मरे नहीं अपितु उसने वृत्रासुर की कोख को काट डाला। इस प्रकार वृत्रासुर की मृत्यु हो गई। वृत्रासुर की मृत्यु से तीनों लोक और लोकपाल परम प्रसन्न हुये। परन्तु देवराज इन्द्र प्रसन्न न हुये। उन्हें ब्रह्म हत्या का शाप सताने लगा। इस पर ब्रह्म ऋषियों ने उन्हें अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा दी। जब अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हुआ तब इन्द्र ने सर्वदेवस्वरूप पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति की। इससे इन्द्र के पाप छूट गये और वे पुनः पूजनीय बन गये।

दूसरी ओर कश्यप की पत्नी दिति अपने दो पुत्रों का इन्द्र के हाथों वध किये जाने से असन्तुष्ट थी। उसने अपने मन में धारणा की कि वह ऐसे पुत्र को जन्म देगी जो इन्द्र का सिर काट सके। इस पर उसने अपने पति कश्यप की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी जिससे प्रसन्न होकर कश्यप ने दिति को आशीर्वाद दिया और वर मांगने के लिये कहा। दिति ने इन्द्र की हत्या करने वाले पुत्र की कामना की जिससे कश्यप को बड़ी आत्मग्लानि हुई। परन्तु वह वचनबद्ध थ्ाा। अतः उसने व्रतपूर्ण करने के लिये अनुष्ठान के बारे में दिति को बता दिया। दिति ने अनुष्ठान पूर्ण किया और गर्भवती हुई। इस पर इन्द्र को चिन्ता सताने लगी। वह भी वेश बदल कर दिति के पास आया। एक दिन अनुष्ठान में कमी आ जाने के कारण इन्द्र ने अपने वज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर दिये। परन्तु दिति का गर्भ नष्ट नहीं हुआ और वे सात टुकड़े जीवित थे। तब इन्द्र ने पुनः एक-एक के सात-सात किये। इस प्रकार दिति के गर्भ में उनचास टुकड़े हो गये। तब दिति ने 49 पुत्रों को जन्म दिया और वे इन्द्र के साथ खेलने लगे। इससे दिति अपना पूर्व वैर भुला कर अपने बच्चों के साथ प्रसन्न रहने लगी। इन्द्र के प्रति उसका वैर विरोध नष्ट हो गया।

सप्तम स्कन्ध

इस स्कन्ध का प्रथम अध्याय नारद-युधिष्ठिर के संवाद से आरम्भ होता है। महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ में शिशुपाल को श्रीकृष्ण में समाते हुये देखा। इसे देख कर वे चकित रह गये और महर्षि नारद से कहने लगे जो व्यक्ति भगवान् की सदा निन्दा करता हो वह उसमें कैसे समा सकता है? भगवान् से द्वेष करने वाले शिशुपाल की यह गति कैसे हुई?

नारद जी ने कहा कि एक दिन ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि ऋषि विचरण करते हुये वैकुण्ठ लोक में चले गये। वहाँ पर उन्हें किसी ने नहीं पहचाना और उन्हें अंदर जाने से रोक दिया। तब उन्होंने द्वारपालों को शाप दिया कि तुम असुरयोनि में जाओ। इस प्रकार ये दोनों दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष थे। ये दोनों विष्णु भगवान् के विरोधी थे। नृसिंह से इन्होंने मृत्यु पद को पाया तथा उसके बाद इन्होंने केकसी के गर्भ से रावण और कुम्भकरण के रूप में जन्म लिया। तब श्रीराम ने अपने ब्रह्मास्त्र से इनके सिर काट दिये। यही दोनों शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुये। भगवान् श्रीकृष्ण के चक्र का स्पर्श प्राप्त हो जाने से उनके सारे पाप नष्ट हो गये। वे सनकादि के पाप से मुक्त हो गये।

इसी प्रकार वराह रूप धारण कर के भगवान् ने हिरण्यक्ष को तथा नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकक्षिपु को मार डाला। हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रहलाद बड़ा ही तेजस्वी तथा ईश्वर भक्त था। उन्होंने गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा प्राप्ति के समय ही वे अपने साथियों को शिक्षा देने लगते। वे कहते इस संसार में मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। इसके द्वारा ही अविनाशी परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु इसका यह पता नहीं कि यह कब समाप्त हो जाये। ईश्वर के चरणों में ध्यान लगाना ही इस जीवन का उद्देश्य है। इसके लिये मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को वश में करना होगा।

मानव प्रायः अपने गृहस्थ के कार्यों में ही उलझ कर रह जाता है। अपने पत्नी, बच्चों, माता-पिता आदि के मोह फांस में फंसा रहता है। इनसे छुटकारा पाने की इच्छा रखते हुए भी वह छुटकारा नहीं पा सकता। यद्यपि परमात्मा को प्रसन्न करना इतना कठिन नहीं है। क्योंकि वे तो सर्वत्र विराजमान हैं। प्राणियों के अन्तःकरण में वे आत्मा रूप से स्थित हैं। सर्वत्र ब्रह्माण्ड में उन्हीं की सत्ता व्याप्त है। भगवान् को प्रसन्न करने के लिये किसी ब्राह्मण, देवता, ऋषि तथा यज्ञ, दान, तप आदि अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। वे तो केवल निष्काम प्रेम-भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं।

प्रहलाद ने देखा कि जब उसके पिता को नृसिंह ने मार दिया और वे अत्यंत क्रोधित हैं तो उन्होंने नृसिंह को दण्डवत प्रणाम किया। इस पर भगवान् का क्रोध शांत हो गया। उसका हृदय दया से भर गया। उन्होंने प्रहलाद को उठाया और अपना वरद हस्त उसके सिर पर रख दिया। तत्काल ही उन्हें परमात्म तत्व का साक्षात्कार हो गया। तब उन्होंने भगवान् से वर मांगा कि मेरे हृदय में किसी भी कामना का बीज अंकुरित न हो। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने पिता के कल्याण की कामना की तथा उन्हें द्वेष आदि के कष्ट से मुक्ति मिल जाए, ऐसी प्रार्थना भी की।

इस स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में मानव धर्म, वर्णधर्म और स्त्री धर्म का निरुपण किया गया है। धर्म से ही मनुष्य को ज्ञान, भगवत्प्रेम और साक्षात् परम पुरुष भगवान् की प्राप्ति होती हैं अजन्मा भगवान् ही समस्त धर्मों का मूल कारण है। धर्म के तीस लक्षण शास्त्रों में कहे गये हैं। जो इस का अक्षरशः पालन करता है द्विज कहलाता है। अध्ययन, अध्यापन, दान देना और लेना, यज्ञ करना और कराना ब्राह्मण के ये छः कर्म हैं। क्षत्रिय का जीवन निर्वाह यथा योग्य कर अथवा दण्ड से प्राप्त आय से है। वैश्य को गोरक्षा, कृषि तथा व्यापार द्वारा अपनी जीविका चलानी चाहिए। शूद्र का धर्म है उपरोक्त तीनों

वर्णों की सहायता करना ।

शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, भगवत्परायणता और सत्य ब्राह्मण के लक्षण हैं । युद्ध में उत्साह, वीरता, धीरता, तेजस्विता, त्याग, क्षमा, ब्राह्मणों के प्रति भक्ति, प्रजा की रक्षा ये क्षत्रिय के लक्षण हैं । देवता, गुरु, भगवान् के प्रति भक्ति, धर्म, अर्थ, काम, आस्तिकता, उद्योगशीलता और व्यावहारिक निपुणता ये वैश्य के लक्षण कहे गये हैं । उच्च वर्णों के सामने विनम्र रहना, पवित्रता, स्वामी की निष्कपट सेवा, चोरी न करना, सत्य तथा गौ, ब्राह्मणों की रक्षा करना शूद्र के लक्षण हैं । पति की सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पति के नियमों की रक्षा करना, पति को ही ईश्वर मानने वाली स्त्री का धर्म ही पतिव्रत धर्म है । साध्वी स्त्री को चाहिये कि घर को स्वच्छ रखे, सामग्रियों को साफ सुथरी रखे, वस्त्रादि अलंकारों से विभूषित रहे, विनय, इन्द्रिय संयम, सत्य और प्रिय वचनों से प्रेमपूर्वक पति को सेवा करे ।

जो चोरी तथा अन्याय पापकर्म नहीं करते वे ही उत्तम गति को पाते हैं । वेददर्षी ऋषि मुनियों ने युगों-युगों में मनुष्य के स्वभाव अनुसार धर्म की व्यवस्था की है । वही धर्म उनके लिये इस लोक और परलोक में कल्याणकारी हैं । जो स्वाभाविक वृत्ति का आश्रय लेकर अपने स्वधर्म का पालन करता है । वह धीरे-धीरे उन स्वाभाविक कर्मों से भी ऊपर उठ जाता है और गुणातीत हो जाता है ।

बारहवें अध्याय में नारद जी ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमों के नियमों पर प्रकाश डालते हैं । गुरुकुल में निवास करने वाला ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर गुरु के चरणों में श्रद्धा रखे । प्रातः और सायं गुरु, अग्नि, सूर्य और देवताओं की उपासना करे । मौन हो कर गायत्री का जप करे । दोनों समय संध्या वन्दन करे । पूर्णतया अनुशासन में रह कर वेदों का स्वाध्याय करे । शास्त्रों के अनुसार वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डल, यज्ञोपवीत तथा हाथ में कुश धारण करे । भिक्षा

से प्राप्त अन्न ग्रहण करे। अपने शील की रक्षा करे। कर्मों को निपुणता के साथ करे एवं श्रद्धा रखें।

वानप्रस्थ आश्रम में सूर्य के ताप से पके हुए कंद, मूल, फल आदि का ही सेवन करना चाहिये। जंगल में पैदा होने वाले चरु आदि से हवन करें। अग्नि की रक्षा के लिये घर, पर्णकुटी, पहाड़ की गुफा आदि का आश्रय ले। शीत, वायु, अग्नि, वर्षा आदि को सहन करे। सिर पर जटा धारण करे और दाढ़ी-मूछ आदि भी न कटवाये। मैल आदि को भी शरीर से अलग न करे। विचारवान पुरुष को चाहिये कि बारह, आठ, चार, दो अथवा एक वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम का पालन करे। रोग अथवा बुढ़ापे के कारण यदि कर्म पूरे न कर सके तो अग्नियों को अपने आत्मा में लीन कर ले। जितेन्द्रिय पुरुष अपने शरीर के छिद्रों को आकाश में तथा प्राण, वायु और ऊष्मा को अग्नि में लीन कर ले।

यदि वानप्रस्थी में ब्रह्मविचार का सामर्थ्य हो तो शरीर के अतिरिक्त सब कुछ छोड़कर संन्यास लें ले। पृथ्वी पर विचरण करे। केवल कौपीन पहने जिससे गुप्त अंग ढके रहें। संन्यासी को चाहिये कि वह सब प्राणियों का हितैषी हो। जागरण की सन्धि में अपने स्वरूप का अनुभव करे। असत्य पदार्थों से प्रीति न करे। जीवन-निर्वाह के लिये जीविका न करे। वाद-विवाद के लिये कोई तर्क न करे। संसार में किसी का पक्ष न ले। शिष्य-मंडली न जुटावे। वह अपने आश्रम के नियमों का पालन करे। वह आत्मानुसंधान में मग्न रहे। प्रायः मौन धारण रखे।

दत्तात्रेय जी ने महाराज प्रहलाद को उपदेश देते हुए बताया कि तृष्णा एक ऐसी वस्तु है जो इच्छानुसार भोगों के प्राप्त होने पर भी पूरी नहीं होती। इसी के कारण मनुष्य जन्म मरण के चक्र में पड़ा रहता है। शुभ कर्मों के कारण ही मनुष्य योनि प्राप्त होती है। सुख ही आत्मा को चाहिये कि नाना पदार्थों के ज्ञान को अपने चित्तवृत्ति में हवन कर दे।

इन सब के भेद-विभेद का कारण माया ही है। ऐसा निश्चय कर के माया को आत्मानुभूति में स्वाहा कर दे। इस प्रकार योगी अपने आत्मा में आत्म स्वरूप का साक्षात् करे।

गृहस्थ संबंधी सदाचार की शिक्षा देते हुए महर्षि नारद महाराज युधिष्ठिर से कहते हैं कि मनुष्य गृहस्थ में रहता हुआ गृहस्थ के कार्यों को करता रहे। परन्तु उन्हें भगवान् के समर्पण करता रहे। वह बड़े संत महात्माओं की सेवा भी करता रहे। विरक्त पुरुषों में यथा समय निवास करे तथा ईश्वर का गुणगान करता रहे। मनुष्य का अधिकार केवल उतने ही धन पर है जिससे उसकी क्षुधा शांत हो जाये। अग्निहोत्र आदि यज्ञों द्वारा भगवान् की आराधना करनी चाहिए। वैसे तो समस्त यज्ञों के देवता भगवान् हैं। यज्ञों की हवि से ही भगवान् की तृप्ति होती है।

धनी द्विजों को अपने सामर्थ्य के अनुसार आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में अपने माता-पिता तथा बंधुओं का भी महालय श्राद्ध करना चाहिए। ये कल्याण की साधना के उपयुक्त और शुभ की अभिवृद्धि करने वाले हैं। अतः अपनी पूरी शक्ति लगा कर शुभ कर्म करने चाहियें। इसी में जीवन की सफलता है।

कुछ ब्राह्मणों की निष्ठा कर्म में, कुछ की तपस्या में, कुछ की स्वाध्याय में, कुछ की प्रवचन में, कुछ की आत्मज्ञान के सम्पादन में तथा कुछ की योग में होती है। इसलिये परमतत्त्व को जानने वाले वेदानुकूल कर्ममय यज्ञों का हवन करते हैं। शास्त्रों में जितने भी नियम अथवा आदेश हैं उन सब का एकमात्र अभिप्राय काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार पर विजय प्राप्त करना है। जो पुरुष अपने मन पर विजय प्राप्त करता है वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है। वह पवित्र और समान भूमि पर अपना आसन जमाये। सुखासन में बैठ कर ॐकार का जाप करे। जब तक मन संकल्प-विकल्प को न छोड़ दे तब तक नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाये रखें। यदि ध्यान

भटकता हो तो प्रयत्नपूर्वक उसे पुनः अपने स्थान पर लायें और नासिका के अग्र भाग पर ही केन्द्रित करें। इस प्रकार वह जीवात्मा को परमात्मा में स्थिर करे। तभी उसे आत्मिक शक्ति प्राप्त हो सकती है।

अष्टम् स्कन्ध

इस स्कन्ध में मन्वन्तरों का वर्णन हुआ है। मन्वन्तर चौदह हैं जोकि इस प्रकार से हैं– (1) स्वायम्भुव मनु, (2) स्वारोचिष मनु, (3) उत्तम मनु, (4) तामस मनु, (5) रैवत मनु, (6) चाक्षुष मनु, (7) वैवस्वत मनु, (8) सावर्णि, (9) दक्ष सावर्णि, (10) ब्रह्म सावर्णि, (11) धर्म सावर्णि, (12) रुद्र सावर्णि, (13) देव सावर्णि, (14) इन्द्र सावर्णि। वास्तव में 43,20,000 वर्ष की एक चतुर्युगी, 71 चतुर्युगी का एक मन्वन्तर, 14 मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। यही काल सृष्टि रचना का है। वाराह कल्प, वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान में चल रहा है। वह परम सत्ता परमात्मा की ही चेतना है जिससे यह जगत् चेतन हो रहा है। परन्तु उस परमात्मा को चेतन करने वाली कोई शक्ति नहीं है। उसी की सत्ता से विश्व की सत्ता है। वही परब्रह्म है। उसकी शक्ति अनन्त है और उसके अनन्त नाम है। वह शरणागत की रक्षा करने वाले हैं। गजेन्द्र को जब ग्राह ने पकड़ लिया तो वे पूरी शक्ति से लड़े। एक हज़ार वर्ष बीत जाने पर भी जब वह स्वयं को ग्राह से नहीं छुड़ा सका तो उसने भगवान् की शरण ली। भगवान् ने प्रकट होकर ग्राह को मार गजेन्द्र की रक्षा की। गजेन्द्र भी भगवान् का स्पर्श प्राप्त होते ही अज्ञान के बन्धन से मुक्त हो गया।

एक बार भगवान् ने देवताओं से सब के कल्याण की बात कही। तब देवताओं ने विचार कर के निर्णय किया कि सभी देव-असुर मिल कर समुद्र का मंथन करें। असुर भी देवों के इस विचार से सहमत हो गये। उन दोनों ने मंदराचल और वासुकि नाग से सागर मंथन का

कार्य करना चाहा। भगवान् भी इस कार्य में सम्मिलित हो गये। भगवान् सर्वप्रथम वासुकि के फन की ओर लग गये। उन्हें देख सभी देवता उनके साथ लग गये। इस पर असुरों ने सोचा कि पूंछ को पकड़ना असुर का अपमान है एवम् यह अशुभ है। इस लिये उन्होंने पूंछ को पकड़ने से इन्कार कर दिया। तब भगवान् ने मुंह को छोड़ पूंछ पकड़ ली। इस पर सभी देवता पूंछ की तरफ आ गये। असुरों ने वासुकि के मुँह को पकड़ लिया। सागर मंथन में वासुकि के मुख से अग्नि निकलने लगी। इससे अनेकों असुर मृत्यु की प्राप्त हुये।

सागर मंथन में पहले विष निकला जोकि देवों और असुरों दोनों को अस्वीकार था। उसे धरती पर भी रखा नहीं जा सकता था। तब सबने सदाशिव का आश्रय लिया और उनकी शरणागत हुये। सदा शिव इस हलाहल का पान कर गये जिससे इनके कंठ का रंग नीला पड़ गया। उसके बाद अमृत का घड़ा निकला जिसे लेने के लिये सभी लालायित थे। अतः उनमें आपस में होड़ लग गई। बलशाली असुरों ने सारा अमृत स्वयं पीना चाहा। परन्तु देवता इसे स्वयं पान करना चाहते थे। भगवान् ने उनके आशय को समझा।

वे एक सुन्दर नारी का रूप धारण करके असुरों के समक्ष आये। असुर, मंत्रमुग्ध से हुये उस ओर निहारने लगे। अमृत कलश उसे भेंट करते हुए न्याय की मांग की। भगवान् रूपी सुन्दरी ने अमृत कलश अपने हाथ में लेकर के और असुरों की अलग-अलग पंक्तियाँ बना दी। असुर भगवान् रूपी परम सुन्दरी को ही देखते रह गये और देवताओं ने अमृत पान कर लिया।

भगवान् शिव भी भगवान् के मोहिनी रूप को देख कर प्रभावित हुये बिना नहीं रह पाये। देवासुर संग्राम में भगवान् का देवों का साथ देने और उनकी विजय के बाद शिव को भगवान् का मोहिनी रूप पुनः देखने की उत्कंठा उत्पन्न हुई। तब वे सती के साथ भगवान के पास

गये। भगवान् श्रीहरि ने गौरी-शंकर का अभिवादन किया। शिव भी भगवन् की अराधना करने लगे। उन्होंने कहा हे प्रभु! अपने असुरों को मोहित कर के जिस प्रकार देवताओं का अमृत पिलाया वह आपका रूप अत्यंत दर्शनीय है। हम आपके उस रूप के दर्शन करना चाहते हैं। इस पर श्रीहरि ने कहा कि देवताओं को अमृत पिलाने और असुरों को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु वह रूप अति आवश्यक था। परन्तु वह रूप तो कामी पुरुषों को ही आदरणीय है। इतने में ही भगवान् वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये।

शिव-सती के साथ बैठे इधर-उधर देखने लगे। कुछ ही क्षण में उन्हें सुन्दर वन में एक अत्यन्त सुन्दर रमणी दिखाई दी। वह वही सुन्दर साड़ी पहने हुये थे। उसके चलने से उसके गले का हार हिल रहा था। शंकर जी उसको देखते रहे। वे स्वयं को सम्भाल न सके। उन्हें पास बैठी अपनी स्त्री सती का भी ध्यान नहीं रहा। वे उठे और उसे मिलने के आतुर हो उठे। उधर माया रूपी सुन्दर स्त्री शिव से बचने के लिये इधर-उधर छिपने लगी। परन्तु शिव ने उसे अपने बाहों में जकड़ लिया। परन्तु माया रूपी स्त्री ने उनके बाहों से छूट कर श्रीहरि के रूप में शिव के सामने प्रकट हो गये। इस पर भगवान् शिव के अमोघ वीर्य का स्खलन हो गया। जहाँ-जहाँ भी गिरा सोने चांदी की खानें बन गई। वीर्यपात हो जाने के बाद उन्हें अपनी स्मृति हुई।

इस स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में आगामी मन्वन्तरों का वर्णन किया है। वर्तमान मन्वन्तर वैवस्वत में विवस्वान् की दो पत्नियाँ थी—संज्ञा और छाया। ये दोनों ही विश्वकर्मा की पुत्रियाँ थीं। विवस्वान् के संज्ञा से—यम, यमी और श्राद्धदेव तथा छाया से सावर्णि, शनैश्चर तथा तपती नामक कन्या उत्पन्न हुई। जब संज्ञा ने बड़वा का रूप धारण कर लिया तो उससे अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार आठवें मन्वन्तर में सावर्णि आदि होंगे।

पंद्रहवें अध्याय में राजा बलि का स्वर्ग पर विजय का वर्णन

आता है । देवराज इन्द्र ने बलि राजा को पराजित करके उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली और उसके प्राण भी ले लिये । शुक्राचार्य ने उसे अपनी संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया । इस पर राजा बलि ने शुक्राचार्य को सर्वस्व अर्पण कर दिया । राजा बलि से विश्वजित् नाम का यज्ञ कराया । यज्ञ की विधि से अग्नि देवता की पूजा की । यज्ञकुण्ड से सुन्दर रथ निकला । इससे अक्षय तरकस और दिवय कवच भी प्रकट हुये ।

राजा बलि ने बहुत बड़ी असुर सेना को लेकर देवताओं की राजधानी अमरावती पर चढ़ाई कर दी । अमरावती में बड़े सुन्दर वन, उपवन, उद्यान आदि है । अनेकों कल्प वृक्ष हैं, आकाशगंगाा ने खाई की भाँति अमरावती को चारों ओर से घेर रखा है । स्वयं विश्वकर्मा ने ही उस पुरी का निर्माण किया है । इन्द्र ने देखा कि बलि बहुत बड़ी सेना लेकर अमरावति पर चढ़ाई कर दी । राजा बलि महान् शक्तिशालही बन कर युद्ध के लिये तत्पर हैं । तब उसने अपने गुरु बृहस्पति जी परामर्श किया । उन्होंने उसे अन्तर्ध्यान होने का परामर्श दिया । इन्द्र अन्तर्ध्यान हो गये तथा बलि विश्व विजयी बन गये ।

देवों की माता अदिति इससे अत्यन्त इससे अत्यन्त खिन्न हो गई । तब उसने भगवान् की उपासना की जिससे भगवान् ने उन्हें आशीर्वाद दिया । तब वे अपने पति कश्यप की सेवा में लग गई है । परिणामस्वरूप भगवान् ने अदिति के गर्भ से वामन रूप में जन्म लिया । इसे देखकर सभी देवता अत्यंत प्रसन्न हुये । भगवान् वामन को देखकर महर्षियों का बड़ा आनन्द हुआ । इस प्रकार वामन राजा बलि की यज्ञशाला में आये । राजा बलि ने वामन का अत्यंत श्रद्धा भाव से स्वागत किया तथा आप जो भी चाहे मुझ से मांग सकते हैं । वामन ने उनका बड़ा अभिनन्दन किया । उन्होंने राजा बलि से तीन पग भूमि मांगी । इस पर बलि ने कुछ और मांगने के लिये कहा । परन्तु वामन ने केवल तीन पग पृथ्वी ही मांगी ।

शुक्राचार्य ने उन्हें स्थिति से अवगत कराना चाहा। परन्तु वे अपने वचन पर अटल रहे। उन्होंने तीन पग पृथ्वी देने के लिये संकल्प ले लिया। वामन ने अपने शरीर का बढ़ाना आरम्भ कर दिया। उनका आकार यहाँ तक बढ़ा कि पृथ्वी, आकाश, दिशाएं, स्वर्ग, पाताल सब कुछ उसमें समा गया। उन्होंने अपने एक पग से सारी पृथ्वी नाप ली, दूसरे पग में उन्होंने स्वर्ग का नाप लिया। तीसरा पग रखने के लिये बलि के पास कुछ भी नहीं बचा। तब भगवान् ने तीसरे पग के लिये राजा बलि से कहा। राजा बलि भगवान् के दर्शक करके आनन्दित हो चुके थे। उन्होंने वामन भगवान् को तीसरा पग अपने सिर पर रखने के लिये प्रार्थना की। तब भगवान् ने उनके सिर पर पंख रखते हुये कहा कि हे बलि सावर्णि मन्वन्तर में तुम मेरे भक्त इन्द्र होंगे और तब तक विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुतल लोक में रहोगे। बड़े-बड़े लोकपाल भी तुम्हें पराजित नहीं कर पाओगे।

अष्टम स्कन्ध अध्याय चौबीस में मत्स्यावतार की कथा का वर्णन मिलता है। वैसे तो भगवान् सभी प्राणियों के स्वामी हैं। फिर भी वे ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद धर्म की रक्षा करने हेतु अवतार धारण करते हैं। पिछले कल्प के अन्त में सत्यव्रत नाम के भगवत् परायण राजर्षि केवल जल पीकर तपस्या कर रहे थे। एक दिन वे नदी में जल से तर्पण कर रहे थे। उसी समय उनकी अंजलि के जल में एक छोटी सी मछली आ गई। उन्होंने मछली को फिर पानी में डाल दिया। मछली ने आर्द्र भाव से राजा से कहा कि जल में रहने वाले जन्तु अपनी जाति वालों को भी खा जाते हैं। मैं बहुत भयभीत हूँ। आप मेरी रक्षा करें। राजा ने मछली के अपने कमण्डल में रख लिया। मछली एक रात में ही इतनी बढ़ गई कि उसे कमण्डल में नहीं रखा जा सकता था। तब राजा ने उसे पानी के मटके में रख दिया। वहाँ भी मछली दो ही घड़ी में तीन हाथ बढ़ गई। तब राजा ने उसे एक सरोवर में डाल दिया। परन्तु

थोड़ी ही देर में उसने सरोवर के जल से भी अपना रूप बना लिया। इस प्रकार राजा उसे बड़े से बड़े सरोवर में ले जाते गये तथा उसका विस्तार बढ़ता गया। तब उसे सागर में डाला गया। उसका विस्तार फिर से बढ़ गया।

इसे देख कर राजा को अत्यंत विस्मय हुआ उन्होंने मछली से कहा ऐसा अद्‌भुत क्रम कभी न देखा है और न सुना है। अतः अपने इस अद्‌भुत स्वरूप से प्रभावित करने वाले आप कौन हैं। तब भगवान् प्रकट हुये और कल्पान्त के प्रलयकालीन समुद्र में विहार करने के लिये उनसे कहा। आज के सातवें दिन भूः लोक आदि तीनों लोक प्रलय के समुद्र में डूब जायेंगे। जब तीनों लोक प्रलय काल की जल राशि में डूबने लगेंगे। तब तुम्हारे पास एक बहुत बड़ी नौका आयेगी। तुम समस्त प्राणियों के सूक्ष्म शरीरों को लेकर सप्त ऋषियों के साथ उस नौका पर चढ़ जाना। धान्य आदि समस्त बीजों को अपने साथ ले लेना। घनघोर अंधकार हो जायेगा केवल ऋषियों की दिव्य ज्योति ही दिखाई देगी। जब नाव डगमगायेगी तब मैं मत्स्य रूप में आ जाऊँगा। तुम वासुकि नाग के द्वारा नाव को मेरे सींग से बांध लेना। तब मैं नाव सहित सागर में विचरण करूँगा। फिर मैं तुम्हें उपदेश करूँगा तथा तुम्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जायेगा। भगवान् यह कह कर अन्तर्ध्यान हो गये।

ठीक सातवें दिन राजा ने देखा कि समुद्र अपनी मर्यादाएं तोड़ बढ़ने लगा है। भयंकर मेघ वर्षा करने लगे। पृथ्वी जल में डूबने लगी। तभी उन्हें नाव दिखाई दी। तब वे धान्य लेकर सप्त ऋषियों के साथ उस पर सवार हो गये। तब उन सबने भगवान का ध्यान किया। तब मत्स्य रूप में भगवान् प्रकट हुये। उन के शरीर का आकार था चार लाख कोस। उनके शरीर पर एक भारी सींग भी था। इस प्रकार वासुकि की सहायता से नाव को सींग के साथ बांध दिया। इस प्रकार नाव सागर में हिलोरे खाती रही और उसमें सवार सभी भगवान का

स्मरण करते रहे । तब भगवान् ने राजा को आत्मज्ञान दिया । तभी जल प्रलय का अन्त हो गया और राजा सत्यव्रत विवस्वान् के रूप में वर्तमान मन्वन्तर के प्रथम राजा के रूप में प्रकट हुये ।

नवम् स्कन्ध

इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में वैवस्वत मनु इस कल्प के प्रथम राजा हुये । इनके इक्ष्वांकु और नरपति पुत्र हुये । भगवान् की नाभि से एक कमल कपोश प्रकट हुआ । उसी से चतुर्मुख ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ । ब्रह्मा जी से मरीचि और मरीचि के कश्यप हुए । कश्यप से विवस्वान् और विवस्वान से श्राद्ध देव मनु का जन्म हुआ । इनके दस पुत्र हुये । इनमें से एक का नाम पृषघ्र था । मनु का एब से छोटा पुत्र कवि था । कवि से कारुष, नृग का पुत्र सुमति उसका पुत्र भूतज्योति और भूतज्योति का पुत्र वसु था । वसु का प्रतीक, प्रतीक का पुत्र ओघवान हुआ । मनुपुत्र नरिष्यन्त से चित्रसेन, उससे ऋक्ष, ऋक्ष से मीढवान, मीढवान से कूर्च और कूर्च से इन्द्र की उत्पत्ति हुई । इन्द्रसेन से वीहिहोत्र, उससे सत्यश्रवा, सतयश्रवा से उरुश्रवा और उससे देवदत्त की उत्पत्ति हुई ।

मनुपुत्र राजा शर्याति वेदों के निष्ठावान विद्वान् थे । उनकी एक कन्या सुकन्या थी । एक दिन राजा अपनी कन्या के साथ च्यवन के आश्रम में जा पहुँचे । सुकन्या अपनी सखियों के साथ वृक्षों का सौंदर्य देख रही थी । उसने एक स्थान पर देखा कि बांबी के छेद में से जुगनू की तरह जोतियाँ दिख रही हैं । सुकन्या ने एक तिनके से ज्योति को बेध दिया जिससे रक्त की धारा कहर निकली । राजा शर्याति के सैनिकों का मल रुक गया । राजा को शंका हुई । राजा ने च्यवन मुनि की स्तुति की और उसे अपनी कन्या दे दी ।

सुकन्या च्यवन मुनि की सेवा करने लगी । कुछ समय पश्चात्

अश्वनी कुमार आश्रम में आये। उन्होंने च्यवन ऋषि को युवा बना दिया। इस पर च्यवन ने उन्हें सोम रस का भाग देने का वचन दिया। शर्याति राजा से तीन पुत्र –उत्तानवहि, आनर्त और भूरिषेण मनुपुत्र नभग का पुत्र नाभाग था। नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुये। पृथ्वी का समस्त ऐश्वर्य इनके पास था। अम्बरीश के तीन पुत्र हुए जो विरुप, केतुमान् और शम्भू। राजा पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु था, उनका अनरण्य, अनरण्य के हर्यश्व, हर्यश्व के त्रिबन्धन। त्रिबन्धन के पुत्र सत्यव्रत हुये। यह गुरु के शाप से चाण्डाल बन गये। विश्वामित्र ने उन्हें आकाश में स्थिर कर दिया। सत्यव्रत का दूसरा नाम त्रिशंकु भी था। सत्यव्रत से हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुये। हरिश्चन्द्र का रोहित हुआ। रोहित का पुत्र हरित था। उसी ने चम्पापुरी नगरी बसाई। हरित से चम्प उत्पन्न हुये। चम्प से सुदेव, सुदेव से विजय। विजय का भरुक, भरुक का वृक्क और वृक्क का पुत्र बाहुक हुआ।

शत्रुओं ने बाहुक से राज्य छीन लिया। वह अपनी पत्नी के साथ वन में चला गया। वहाँ उस की पत्नी ने सगर को जन्म दिया। सागर बड़े यशस्वी राजा हुये। उनके पुत्रों ने पृथ्वी को खोद कर समुद्र बना दिया। सगर ने अपने गुरु की आज्ञा मान कर अपने शत्रुओं का वध नहीं किया अपितु उन्हें विरुप बना दिया। कुछ के सिर मंडवा दिये। कुछ की मूंछे रखवा दी। कुछ को खुले बालों वाला बनवा दिया। कुछ को केवल वस्त्र ओढ़ने की आज्ञा दी और कुछ को वस्त्र पहनने की आज्ञा दी। इसके बाद राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया। इन्द्र ने उसका घोड़ा चुरा लिया। सगर के पुत्रों ने कोड़े को ढूंढने के लिये सारी पृथ्वी का चक्कर लगाया। घोड़ा उन्हें कपिल मुनि के आश्रम से मिला। उन्होंने कपिल मुनि का तिरस्कार किया। मुनि की क्रोध अग्नि से सगर के सभी पुत्रों का नाश हो गया।

सगर की दूसरी पत्नी का नाम केशिनी था। उसके गर्भ से असमंजस उत्पन्न हुआ। असमंजस के अंशुमान हुये। असमंजस बुद्धिहीन हो गये थे वे खेलते हुये बच्चों को पानी में फेंक देते थे। परन्तु अपने योगबल से वे बच्चों को जिन्दा भी कर देते। कपिल मुनि से अंशुमन से कहा कि यह घोड़ा तुम्हारे पिता का यज्ञपशु है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे पूर्वजों का उद्धार केवल गंगा ले जाओ। तुम्हारे पूर्वजों का उद्धार केवल गंगा जल से होगा। अंशुमन के पुत्र दिलीप ने गंगा की तपस्या की। परन्तु गंगा लाने में असफल रहा। तब दिलीप के पुत्र भागीरथ ने गंगा धरती पर लाने का प्रयास किया। भागीरथ ने गंगा के दर्शन किये। भगवान् शिव की कृपा से गंगा धरती पर प्रकट हुई। भागीरथ जहाँ भी गये गंगा उनके पीछे चलती गई।

भागीरथ का पुत्र श्रुत था। श्रुत का नाभ, नाभ का सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप का अयतायु। अयतायु के पुत्र का नाम ऋतुपर्ण था। वह नल का मित्र था। ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम सर्वकल्प के पुत्र का नाम सुदास था। सुदास के पुत्र का नाम सौदास था। सौदास से अश्मक और अश्मक से मूलक तथा मूलक के दशरथ हुये। दशरथ के ऐडविड और ऐडकिड के विश्वसह। विश्वसह के पुत्र खट्वांग चक्रवर्ती सम्राट् बने। सम्राट् खट्वांग के दीर्घबाहु और दीघबाहु के पुत्र यशस्वी रघु हुये। रघु के अज और अज के महाराज दशरथ तथा दशरथ के श्रीराम पुत्र पैदा हुये। श्रीराम ने अपने पिता के सत्यव्रत के लिये अपने सुखों का त्याग कर वन भ्रमण किया। लंका नरेश राक्षसराज रावण तथा बाली का वध करके उन राज्यों में शांति स्थापित की तथा असुर जाति का विनाश कर दिया।

श्रीराम का पुत्र कुश, कुश का पुत्र अतिथि, उसका निषध, निषध का नभ, नभ का पुण्डरीक, पुण्डरीक का क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा का देवानीक, देवानीक का अनीह, अनीह का पारियात्र, पारियात्र का बलस्थल और बलस्थल का पुत्र वज्रनाभ। यह सूर्य का अंश था।

चौदहवें अध्याय में चन्द्रवंश का वर्णन करते हुये शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं । ब्रह्मा जी के पुत्र अत्रि हुये हैं । अत्रि से चन्द्रमा का जन्म हुआ । ब्रह्मा जी ने चन्द्रमा को ब्राह्मण, औषधि और नक्षत्रों का अधिपति बना दिया । उन्होंने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की और राजसूय यज्ञ किया । इससे उसमें अभिमान आ गया । उसने बृहस्पति की पत्नी तारा को हर लिया । देवगुरु बृहस्पति ने अपनी पत्नी लौटाने की बार-बार याचना की । परन्तु वे नहीं माने । इस प्रकार देवताओं और असुरों में युद्ध छिड़ गया ।

तब अंगिरा ऋषि ने ब्रह्मा जी के पास जाकर यह युद्ध बंद कराने की प्रार्थना की और बृहस्पति की पत्नी को वापिस करा दिया । बृहस्पति की पत्नी तारा ने बुध को जन्म दिया । बुध ने पुरुरवा को जन्म दिया । पुरुरवा के रूप सौंदर्य पर उर्वशी मोहित हो गई । पुरुरवा और उर्वशी नन्दन वन, उपवनों में स्वच्छंद विहार करने लगे । उर्वशी के गर्भ से पुरुरवा के छः पुत्र हुये । इनमें से विजय का भीम, भीम का कांचन, कांचन का होत्र और होत्र का पुत्र था जह्न । ये जह्न वही हैं जो गंगा जी को अपनी अंजलि में लेकर पी गये । जह्न का पुत्र पुरु, पुरु का बलाक, बलाक का अजक और अजक का कुश उत्पन्न हुआ । कुश के चार पुत्र हुये । इनमें से कुशम्भु के पुत्र गाधि हुये ।

गाधि की कन्या का नाम सत्यवती था । ऋचीका ऋषि ने गाधि से उसकी कन्या मांगी । ऋचीक और सत्यवती का विवाह हो गया । एक बार महर्षि ऋचीक से उसकी पत्नी और सास ने पुत्र प्राप्ति के लिये प्रार्थना की । महर्षि ऋचीक ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । और दोनों के लिये अलग-अलग मंत्रों से चरु पकाया । सत्यवती की माता ने यह समझ कर कि ऋषि ने अपनी पत्नी के लिये श्रेष्ठ चरु पकाया होगा, उससे वह चरु मांग लिया । इस पर उन दोनों ने चरु को बदल कर अपना चरु माँ को और माँ का चरु आप खा लिया । तब ऋषि ने सत्यवती से कहा कि तुमने अनर्थ कर दिया । अब तुम्हारा पुत्र लोगों

को दण्ड देगा और तुम्हारा भाई श्रेष्ठ वेदवेत्ता। सत्यवती ने ऋषि से क्षमा मांगी और ऐसा न करने को कहा। तब ऋषि ने कहा कि तुम्हारा पौत्र ऐसा होगा। इस प्रकार सत्यवती से जमदग्नि का जन्म हुआ। इसका विवाह रेणुका से हुआ। इनके कई पुत्र हुए। इनमें परशुराम सब से छोटे थे।

एक दिन सहस्रबाहु अर्जुन महर्षि जगदग्नि के आश्रम में आये। ऋषि के पास कामधेनु थी जिससे उसने सहस्रबाहु अर्जुन की सेना का स्वागत किया। सहस्रबाहु उसे देखकर ढंग रह गये। वे बलात कामधेनु को ले गये। जब परशुराम को इसका पता चला तो उसने सहस्रबाहु को मार कर कामधेनु वापिस ले आये। राजपुत्र अपनी जान बचा कर भाग गये। लेकिन उन्हें अपने पिता की मौत का बदला लेना था। एक दिन उन्होंने महर्षि जमदग्नि का सिर काट दिया। रेणुका रोने लगी। परशुराम को माता का रुदन सुनाई दिया। उसने राजा पुत्रों का वध करके पिता के सिर वापिस लाकर मंत्रों के द्वारा जोड़ दिया। इस प्रकार परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का वध कर के धरती को क्षत्रियों से मुक्त किया।

महाराज गाधि के पुत्र परम तेजस्वी विश्वामित्र जी थे। इन्होंने तपोबल से क्षत्रियत्व का त्याग कर दिया और ब्रह्मत्व को प्राप्त हुये। इनके सौ पुत्र थे जो मधुच्छन्दा के नाम से विख्यात हैं। विश्वामित्र ने शुनःशेप को भी पुत्र रूप में स्वीकार किया और अपने पुत्रों से कहा कि इसे अपने बड़े भाई के रूप में स्वीकार करो। यह शुनः शेप हरिश्चन्द्र के यज्ञ में यज्ञ पशु के रूप में मोल लेकर लाया गया था। विश्वामित्र ने वरुण आदि देवों की स्तुति करके उसे पाशबन्धन से छुड़ा लिया था। उसे अपने बड़े पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया था।

राजा नहुष के छः पुत्र थे। उनमें से ययाति राजा बने। उसने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह कर लिया। वे पृथ्वी की रक्षा करने लगे। देवयानी के यदु और

तुर्वसु दो पुत्र हुये और शर्मिष्ठा के तीन पुत्र हुये–द्रुह्यु, अनु और पुरु। राजा ययाति ने अपना राज्य अपने छोटे पुत्र पुरु को सौंप दिया। पुरु का पुत्र जनमेजय, जनमेजय का प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान का प्रवीर, प्रवीर का नमस्यु और नमस्यु का चारुपद हुआ। चारुपद से सुद्यु, सुद्यु से बहुगव, बहुगव से संयाति, संयाति से अहंयाति और अहंयाति के रौद्राश्व हुये। रौद्राश्व के ऋतेयु, ऋतेयु का रन्तिभार, रन्तिभार के अप्रतिरथ और अप्रतिरथ के पुत्र का नाम कण्व था। रन्तिभार के पुत्र सुमति भी थे। सुमति के पुत्र रैभ्य और रैभ्य का पुत्र दुष्यन्त था।

एक बार राज दुष्यन्त वन में शिकार खेल रहे थे। वे कण्व मुनि के आश्रम में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने शकुन्तला को देखा। वे उस पर मोहित हो गये। राजा ने शकुन्तला से उसका परिचय पूछा। उसने कहा कि मैं विश्वामित्र पुत्री हूँ। मेनका ने मुझे वन में छोड़ दिया। मेरा पालन करने वाले महर्षि कण्व इसके साक्षी हैं। अतः शकुन्तला ने राजा का स्वागत किया। राज कन्याएं स्वयं ही अपने पति का वरण कर लेती हैं। अतः मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ और अपनी स्वीकृति प्रदान करें। स्वीकृति मिलने पर राजा दुष्यन्त ने उससे गान्धर्व विवाह कर लिया। दूसरे दिन वे अपनी राजधानी आ गये। समय आने पर शकुन्तला ने एक पुत्र को जन्म दिया। महर्षि कण्व ने राजकुमार का जात कर्म संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किया। यह बालक बचपन से ही इतना बलवान था कि बड़े-बड़े सिंहों को बलपूर्वक बांध लिया करता था। यही बालक बड़ा होकर भरत बना और इस देश को अपना नाम दिया जिससे आर्यावर्त्त को भारतवर्ष कहा जाने लगा। भरत ने जो महान् कार्य किये उनसे पहले किसी भी राजा ने नहीं किये। भरत ने दिग्विजय के समय ब्राह्मण द्रोही राजाओं को मार डाला। भरत ने 27,000 वर्ष तक समस्त दिशाओं का एकछत्र शासन किया।

दशम स्कन्ध

पूर्वार्ध

भागवत पुराण के दशम् स्कन्ध को दो भागों में बाँटा गया है– पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध भाग में श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन हुआ है। श्रीकृष्ण यदुवंश के शिरोमणि माने जाते हैं। प्राचीन काल में यदुवंशी राजा शूरसेन माथुर मण्डल और शूनसेन मण्डल का राज्य करते थे। तभी से मथुरा यदुवंशियों की राजधानी हो गई थी। एक बार मथुरा में शूर के पुत्र वसुदेव विवाह करके अपनी नव विवाहिता पत्नी देवकी के साथ घर जाने के लिए रथ पर सवार हुये। उग्रसेन का लड़का कंस था जो देवकी का चचेरा भाई था अपनी बहन को प्रसन्न करने के लिये उसके रथ के घोड़ों की रास पकड़ ली। वह स्वयं ही रथ हाँकने लगा। मार्ग में उसे किसी ने कहा–अरे मूर्ख! जिसको तू रथ में बैठाकर ले जा रहा है उसकी आठवीं सन्तान तुझे मार डालेगी। यह सुनकर उसके अन्तःकरण में पाप जाग गया। वास्तव में वह पापी ही था। उसने रथ रोका और तलवार खींच ली और देवकी को मारने के लिये तैयार हो गया। महात्मा वसुदेव जी उसको शान्त करते हुये बोले–

तुम वंश की कीर्ति बढ़ाने वाले हो। बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणों की सराहना करते हैं। एक तो स्त्री, दूसरी आपकी बहिन, तीसरे विवाह का शुभ अवसर, ऐसी स्थिति में आप इसे कैसे मार सकते हैं। यदि तुम ने ऐसा किया तो तुम पाप के भागी बनोगे और अपने वंश को कलंकित करोगे। इस प्रकार वसुदेव ने कंस को साम नीति और भय आदि भेद नीति से बहुत समझाया। परन्तु वह तो आसुरी शक्ति के अधीन हो चुका था। तब उन्होंने इस परिस्थिति को टालने का विचार किया कि कंस को पुत्र दे देने की प्रतिज्ञा करके मैं देवकी के प्राणों की रक्षा करूं।

वसुदेव जी ने कंस से कहा–आर्यपुत्र! आपको देवकी से तो कोई भय नहीं है। भय है पुत्रों से। इसके पुत्र मैं आपको सौंप दूँगा। उसे वसुदेव पर पूर्ण विश्वास था फिर भी उसने उन दोनों को कारागार में डाल दिया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वसुदेव देवकी के पुत्रों को कंस को सौंप देते और कंस उन्हें मार देता। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को क़ैद करके स्वयं शासन सम्भाल लिया। एक तो वह शक्तिशाली था, दूसरे मगध नरेश जरासन्ध की उसे सहायता प्राप्त थी। तीसरे बहुत सारे दैत्य–प्रलम्भापुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, मुष्टिक आदि उसके सहायक थे।

जब एक-एक करके देवकी के छः बालक मार डाले तो सातवें गर्भ की रक्षा हेतु वसुदेव की पहली पत्नी रोहिणी, वसुदेव और देवकी से मिलने के लिए आई। योगमाया के द्वारा देवकी का सातवां गर्भ रोहिणी के पेट में चला गया। इस प्रकार देवकी का सातवाँ गर्भपात मान लिया गया। परन्तु आठवें गर्भ से देवकी का चेहरा भी कान्तिमान होने लगा था। यह देखकर कंस को भी आश्चर्य होने लगा। इतनी प्रसन्न देवकी आज तक नहीं थी। वह विचार करने लगा। परन्तु देवकी को मारने का विचार उसे कलंकित करने लगा। अतः वैर भाव को मन में आप्लावित करके वह बालक के जन्म की प्रतिक्षा करने लगा।

भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, रोहिणी नक्षत्र में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। जन्म लेते ही आँधी, तूफान और वर्षा जोरों से आई। एक सुनिश्चित व्यवस्था के अनुसार कंस की जेल से वसुदेव अपने पुत्र को लेकर निकल गये और गोकुल में अपने मित्र नन्द के घर पहुँचे। नन्द के घर उसी समय लड़की हुई। वसुदेव में अपना पुत्र नन्द को तथा उसकी पुत्री स्वयं लेकर पुनः जेल में आ गये और जंजीरों में पुनः जकड़ दिये गये। तब बालक की रोने की आवाज़ को सुन कर प्रहरियों ने इसकी सूचना कंस को दी। तब कंस जेल में बालक को मारने आ

गया। लेकिन बालक के स्थान बालिका को देख कर वह बड़ा चकित हुआ। जैसे ही वह बलिका को मारने लगा तब बालिका ने कहा–रे दुष्ट! मुझे मार कर तुम्हें क्या मिलेगा? तुझे मारने वाला तो पैदा हो चुका है।

इससे कंस को अपने कर्मों का प्रायश्चित होने लगा। परन्तु वह बहुत व्यभिचारी था। दूसरे उसके मंत्री भी धूर्त थे। वे उसे कभी भी अच्छा सुझाव नहीं देते थे। अतः उन्होंने सद्य जन्म बच्चों को मार देने का सुझाव दिया। जिसे कंस ने स्वीकार कर लिया। इसके लिये उसने पूतना को इस कार्य पर लगाया। पूतना का दूध विष बन चुका था। अतः वह दूध पिला कर बच्चों को मार रही थी। वह आकाश मार्ग से चल सकती थी और अपनी इच्छा के अनुसार रूप भी बना लेती थी। एक दिन सुन्दर युवती बन कर वह यशोधा के आंगन में आ गई और कृष्ण को अपना दूध पिलाने लगी। कृष्ण ने उसके स्तनों का दबा दिया जिससे उसके प्राण निष्फल गये।

कंस ने तृणावर्त नामक दैत्य को भी बच्चों को मारने के लिये भेजा। वह कृष्ण को उठा कर आकाश में चला गया। परन्तु कृष्ण के भारी बोझ को वह सहन न कर सका। वह कृष्ण की पकड़ से अपना गला भी न छुड़ा सका। अतः वह निश्चेष्ट होकर धरती पर गिर पड़ा और मारा गया। श्रीकृष्ण उसके वक्ष से लटक रहे थे। नन्द बाबा ने यदुवंशियों के कुल पुरोहित श्री गर्गाचार्य से कृष्ण के नामकरण संस्कार करने का अनुरोध किया। उन्होंने श्रीकृष्ण का नामकरण बिना किसी की उपस्थिति के गोशाला में ही कर दिया। बचपन से ही वह एक वीर योधा थे। गाय चराते समय उन्होंने अनेकों असुरों का संहार कर दिया।

पूर्वार्ध भाग के अध्याय सोलह में कालिय नाग का वर्णन आता है। यह एक विषैला सर्प है जो यमुना के पानी को भी विषैला कर रहा था। विष की गर्मी से यमुना का जल खौलने लगा था। इससे तट के

घास, पात आदि भी विषाक्त हो गये थे। श्री कृष्ण ने पेड़ पर चढ़ कर विष कुण्ड में छलांग लगा दी। पानी की तरंगें उठने के कारण कालिय नाग बाहर आया। उसने श्रीकृष्ण को अपने पाश में बांध लिया। परन्तु कुछ ही समय पश्चात् वे नाग के पाश से बाहर आ गये और उन्होंने कालिय नाग का वध कर दिया। इस प्रकार गौंवें चराते हुये उन्होंने प्रलम्भासुर का भी वध किया।

पूर्वार्ध के बाईसवें अध्याय में चीर हरण का उल्लेख मिलता है। ब्रज की कुमारियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत हेमन्त ऋतु में आरम्भ कर देती हैं। इस प्रकार वे एक मास तक सूर्योदय के समय स्नान करती और व्रत रखती। वे मंत्र का जाप भी करती। एक दिन जब सब कुमारियों ने यमुना तट पर अपने-अपने वस्त्र उतार दिये और जल क्रीड़ा करने लगी। तब श्रीकृष्ण वस्त्र उठा कर एक पेड़ पर चढ़ गये। वे उन्हें उपदेश देना चाहते थे। नग्न स्नान एक दोष है जो कि पशुत्व को बढ़ाने वाला है। शास्त्रों में इसका निषेध है। न नग्नः स्नायात्—यह शास्त्र की आज्ञा है। अतः वे नहीं चाहते थे कि गोपियां शास्त्र के विरुद्ध आचरण करें। भारतीय दर्शन का यह सिद्धान्त है कि वे प्रत्येक वस्तु में पृथक्-पृथक् देवताओं का अस्तित्व है। इस नग्नस्नान को देवताओं के विपरीत बतलाता हैं इससे वरुण देवता का अपमान होता है। यदि इस परम्परा को बढ़ने से रोका न गया तो आगे चलकर इसके भयंकर परिणाम हो सकते थे।

अतः श्रीकृष्ण ने समाज की व्यवस्था को बनाये रखने के लिये उचित कार्यवाई की। उसने गोपियों को ऐसा न करने की शपथ दिलाई। इसी प्रकार वर्तमान में भी वेदविरुद्ध सम्प्रदाय चलने के कारण समाज में अव्यवस्था फैलती जा रही है। इसलिये आज के संदर्भ में भी श्रीकृष्ण जैसे विद्वानों की विशेष आवश्यकता है।

चौबीसवें अध्याय में इन्द्र यज्ञ निवारण का तथा गोवर्धन पर्वत धारण का अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख मिलता है। इनसे श्रीकृष्ण गोकुल

के शिरोमणि माने जाने लगे। उधर गर्गाचार्य भी कृष्ण के दिव्य गुणों की चर्चा कर चुके थे। उनतीसवें अध्याय में रास लीला का वर्णन मिलता हैं शरद् ऋतु में प्रकृति की छटा द्रष्टव्य होती है जिसे देखकर संसार का प्रत्येक प्राणी प्रफुल्लित हो उठता है। दिन के साथ-साथ रात्रि तो और भी सुखद बन जाती है तथा रात्रि का चन्द्रमा जब अपनी मनोहर छटा धरती पर बिखेरता है तो ऐसा लगता है कि प्रकृति नई-नवेली दुल्हन की तरह से सज उठती है। समस्त गोकुल निवासी इस प्रकृति के सौंदर्य का आनन्द लेते हैं। छत्तीसवें अध्याय में अरिष्टासुर नामक बैल का वर्णन आता है। वह बहुत शक्तिशाली है तथा उसकी गर्जना से नारियों के गर्भ तक गिर जाते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण खेल-खेल में ही उसका काम तमाम कर देते हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के कार्यों की बात कंस तक पहुँच जाती है। तब वह सावधान हो जाता है और कृष्ण को मारने की योजना बनाता है। अतः वह अनेकों असुरों को कृष्ण को मारने के लिये भेजता है। परन्तु यह सब व्यर्थ होता है। तब वह अक्रूर जी को बुलाकर उसे गोकुल भेजा और बलराम, कृष्ण को मथुरा लाने के लिये भेजा। उन्हें राजधानी की शोभा और धनुष यज्ञ को देखने के लिये आमंत्रित किया। अक्रूर जी इस कार्य के लिए गोकुल चले गये। उनका हृदय शंकाओं से भरा हुआ था।

मथुरा में आकर वे नंद बाबा से मिले। नंद ने उनका स्वागत किया। अक्रूर जी ने उन्हें बताया कि कंस ने तो सभी यदुवंशियों से वैर ठान रखा हैं तब उसने अपने आने का सारा वृतांत्त कह सुनाया। अगले दिन प्रातः ही दोनों भाई अक्रूर जी के साथ मथुरा के लिये चल पड़े। दिन ढलते ही वे मथुरा जा पहुँचे। तब कृष्ण ने हाथ जोड़ कर मुस्कुराते हुये कहा कि आप मथुरापुरी में प्रवेश कीजिए और हम नगर की शोभा देखकर आयेंगे। तब अक्रूर जी ने कहा कि मैं आपके बिना मथुरा में प्रवेश नहीं कर सकता। परन्तु कृष्ण के पुनः कहने पर अक्रूर

जी चले गये और कृष्ण और बलराम के आने का समाचार दे दिया।

श्रीकृष्ण और बलराम नगर की शोभा को देखते हुये रंगशाला में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुष के समान एक अद्‌भुत धनुष देखा। उसकी रक्षा के लिये अनेकों सैनिक लगे हुये थे। रक्षकों के रोकने पर भी श्रीकृष्ण नहीं रुके और उन्होंने धनुष को उठाकर डोरी चढ़ाई जिससे वह टूट गया। इससे बहुत जोर की आवाज़ हुई जिससे दिशाएं भी गूंजने लगीं। इस पर रक्षकों और श्रीकृष्ण में युद्ध छिड़ गया। जब कंस को इस बात का पता चला तो वह बहुत डर गया। जब रात बीत गई तो प्रातः ही कंस ने मल्ल क्रीड़ा का महोत्सव आरम्भ कराया। कृष्ण और बलराम भी नगाड़े की ध्वनि सुनकर रंगभूमि देखने के लिये चल पड़े। दरवाजे पर हाथी सहित महावत को देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें ललकारा। हाथी ने सूंड से प्रहार किया परन्तु श्रीकृष्ण उसके अगले पांवों तक पहुँच गये। इसके बाद हाथी की पूंछ पकड़ कर वे पीछे घसीटने लगे। इस प्रकार उसकी सूंड पकड़ कर हाथी को घुमा दिया। वह स्वयं को संभाल न पाया और नीचे गिर गया। तब श्रीकृष्ण ने मरे हुये हाथी के दांत लिये और रंगशाला में प्रवेश किया। रंगशाला में श्रीकृष्ण ने चाणूर, मुष्टिका आदि पहलवानों को भी मार डाला।

इसके बाद वह कंस पर झपटा जिससे उसका मुकुट नीचे गिर गया। तब उसके केश पकड़ कर उसे सिंहासन से उठाकर रंगभूमि में गिरा दिया और उस पर कूद पड़े। गिरते ही कंस की मृत्यु हो गई। मथुरा नगरी कंस के अत्याचारों से मुक्त हो गई। तब उन्होंने उग्रसेन को यदुवंशियों का राजा बना कर जेल से अपने माता-पिता को छुड़वाया। सब जगह मथुरा में श्रीकृष्ण और बलराम की जय-जयकार होने लगी। अब श्रीकृष्ण और बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया गया। उन्हें वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया गया। तब उन्हें गुरुकुल में निवास करने की इच्छा से काश्यगोत्री सान्दीपनी मुनि के पास भेजा।

ये दोनों भाई गुरु जी के पास रहने लगे। उन्होंने वेद शास्त्रों, उपनिषदों और शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। केवल चौसठ दिन में ही इन्होंने सम्पूर्ण विद्या प्राप्त कर ली। दण्ड, भेद की नीति को भी विस्तार से समझ लिया। सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करके गुरु जी के समक्ष गुरु दक्षिणा देने हेतु उपस्थित हुये।

तब गुरु ने अपने खोये हुए पुत्र को लाने का आदेश दिया। उनका पुत्र प्रभास क्षेत्र में जल में डूब गया था। तब वे समुद्र तट पर गये और समुद्र की स्तुति की। सागर ने उसके पुत्र की जानकारी दी। परिणामस्वरूप वे गुरु पुत्र को लेकर गुरुजी के चरणों में उपस्थित हुये। अपने पुत्र को देख कर गुरु और गुरु माता अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होंने श्रीकृष्ण और बलराम को अनेकों आशीर्वाद देकर विदा कर दिया। इसी बीच उन्हें गोकुल की याद आई। उन्होंने गोपियों को समझाने हेतु गोकुल में अपने प्रिय सखा उद्धव को भेजा। उद्धव उन्हें निर्गुण परमात्मा की उपासना का उपदेश देता है। परन्तु गोपियाँ तो श्रीकृष्ण के रंग में रंगी हुई है। उन्हें तो अपने चारों ओर कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है मानो सारा ब्रज कृष्णमय हो गया हो।

श्रीकृष्ण अक्रूर जी से मिलने उनके घर गये। उनकी स्तुति की। उन्हें कहा—चाचा जी। आप हमारे सुहृदयों में श्रेष्ठ हैं। अतः आप पाण्डवों का हित करने के लिए तथा उनका कुशल मंगल जानने के लिये हस्तिनापुर जाइए। राजा पाण्डु के निधन के पश्चात् पाण्डव और उनकी माता कुन्ती बड़े दुःख में पड़ गये हैं। राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी हस्तिनापुर में ले आये और वे वहीं रहते हैं। राजा धृतराष्ट्र नेत्रहीन हैं और उनमें मनोबल की कमी है। उनका पुत्र दुर्योधन बड़ा दुष्ट है। इसलिये आप उनकी कुशलक्षेम का समाचार लेने हस्तिनापुर जाइए।

इस प्रकार अक्रूर जी पाण्डवों की कुशलक्षेम जानने हेतु हस्तिनापुर चले गये। वे वहाँ धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, युधिष्ठिर आदि सभी भाइयों से मिले। उन्होंने अपने मथुरा वासी परिजनों की कुशलक्षेम भी बताई। धृतराष्ट्र में अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन के विरुद्ध कुछ भी करने का साहस नहीं था। जब वे देखते कि प्रजा पाण्डवों से प्यार करती है तब वे और भी चिढ़ जाते। कुन्ती ने जब अक्रूर जी को देखा तो उसे अपने मायके की याद आ गई। उसने अपने परिवार की कुशल क्षेम पूछी। अपने विषय में बताते हुये उसने कहा कि मैं शत्रुओं के बीच में घिरी हुई दुःख भोग रही हूँ।

अक्रूर जी मथुरा वापिस आते समय पुनः धृतराष्ट्र से मिले तथा कहा कि आप धर्म से पृथ्वी का पालन कीजिए। आप अपने और पाण्डु पुत्रों के साथ समानता का व्यवहार कीजिए। इससे आपको लोक में यश और परलोक में सद्गति प्राप्त होगी। यदि इसके विपरीत कार्य करोगे तो लोक में निन्दा तथा मरने के बाद नरक प्राप्त होगा। अतः आप प्रयत्नपूर्वक अपने चित्त को शान्त करें और ममतावश पक्षपात न करें।

राजा धृतराष्ट्र ने अक्रूर जी से कहा यद्यपि आप मेरे कल्याण की बात कर रहे हैं। जेसे मरने वाले को यदि अमृत मिल जाये तो वह इससे तृप्त नहीं हो सकता। ठीक इसी प्रकार आप की कल्याण भरी बातें मेरे मन को स्थिर नहीं कर पा रही हैं। मेरे चंचल मन में यह अनमोल वचन तनिक भी नहीं ठहर पा रहे हैं। आपकी यह अमूल्य वाणी मेरे मन को स्थिर नहीं कर पा रही है। अतः परमात्मा की जो इचछा होगी वही होगा। हम प्राणी उसमें कुछ भी नहीं कर सकते। इस प्रकार अक्रूर जी ने धृतराष्ट्र के मन की व्यथा को श्रीकृष्ण को आकर बता दी।

दशम स्कन्ध के पचासवें अध्याय में श्रीकृष्ण और जरासन्ध के युद्धों का वर्णन मिलता है। क्योंकि कंस के साथ जरासन्ध की दो पुत्रियों का विवाह हो रखा था। कंस की मृत्यु के बाद जरासंध ने 23 अक्षोहिणी सेना के साथ मथुरा पर आक्रमण किया। श्रीकृष्ण और बलराम ने इन युद्धों का डटकर मुकाबला किया। यही नहीं जरासन्ध ने विदेशी कालयवन से भी सन्धि करके उसे भी मथुरा पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। जरासन्ध ने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किया। इन सब में जरासन्ध को मुंह की खानी पड़ी।

अन्त में जरासन्ध ने कालयवन को मथुरा पर आक्रमण हेतु भेजा। कृष्ण तो पहले से ही इसके लिए तैयार थे। उन्होंने युक्ति से कार्य लिया और अकेले कालयवन को द्वन्द्व हेतु ललकारा। द्वन्द्व में वे कालयवन को सेना से अलग बड़ी दूर ले गये। वहाँ उन्होंने कालयवन से छदम् रूप धारण कर छिप गये। कालयवन ने पास में सोते हुए आदमी को कृष्ण समझ कर उठाया और ललकारा। परन्तु वह कृष्ण नहीं था। उसके उठते ही कालयवन भस्म हो गया। इस प्रकार कालयवन की सेना अपने प्रधान की मृत्यु का समाचार सुन कर भाग खड़ी हुई। अब कृष्ण ने युक्ति से कार्य लिया तथा अपनी राजधानी के स्थानान्तरण पर विचार करने लगे। अतः सर्वसम्मति से यह पारित किया गया कि ऐसे स्थान पर राजधानी बनाई जाए जहाँ पर जरासन्ध के लिये पहुँचना अत्यंत कठिन है। अतः चारों ओर से समुद्र से घिरे द्वीप पर द्वारिका नगरी बसाने और वहाँ राजधानी बनाने पर सहमति बना ली गई। इस प्रकार कृष्ण अपने बन्धु-बांधवों सहित द्वारिका चले गये। इस प्रकार उनका राज्य जरासन्ध के आक्रमणों से बच गया।

विदर्भ देश के अधिपति राजा भीष्मक ने अपनी पुत्री रुकमणि के विवाह का विचार किया। यद्यपि राजा अपनी पुत्री का विवाह कृष्ण के साथ करना चाहता था और रुकमणि भी ऐसा ही चाहती थी। परन्तु रुकमणि के भाई रुकमी ने अपनी बहन रुकमणि का विवाह शिशुपाल

के साथ निर्धारित कर दिया। विवाह की तैयारियाँ भी पूर्ण होने लगी। तब रुकमणि ने एक ब्राह्मण के हाथ कृष्ण को सन्देश भेजा तथा विवाह से एक दिन पूर्व देवी मन्दिर में पूजन के समय मिलन हेतु उनसे अनुरोध किया। ब्राह्मण सन्देश लेकर कृष्ण के पास द्वारिका गया तथा रुकमणि का सन्देश उन्हें कह सुनाया। यद्यपि श्रीकृष्ण भी रुकमणि के रूप सौंदर्य से प्रभावित थे। अतः उन्होंने सन्देश अनुसार कार्यवाई करने की स्वीकृति हेतु ब्राह्मण को सन्देश दे दिया।

विवाह से ठीक एक दिन पूर्व रुकमणि पूजा-अर्चना हेतु अपनी सखियों सहित मन्दिर गई। वह बहुत चिन्तित थी। परन्तु कृष्ण को मन्दिर में देखा तो वह अत्यंत हर्षित हो उठी। वहीं से कृष्ण ने रुकमणि को अपने रथ पर बैठा लिया। बलराम ने सेनाओं को वहीं रोके रखा। कृष्ण रुकमणि को द्वारिका लाने हेतु चल पड़े। मार्ग में उन्हें रुकमी ने रोक लिया। परन्तु रुकमी कृष्ण के साथ युद्ध में परास्त हो गया। इस प्रकार कृष्ण ने द्वारिका में आकर रुकमणि के साथ विवाह सम्पन्न किया। इसके अतिरिक्त अध्याय छप्पन में श्रीकृष्ण का जाम्बवती और सत्यभामा के साथ विवाह का वृतांत्त भी मिलता है। दशम स्कन्ध के अठावनवें अध्याय में कृष्ण का विवाह सूर्य देव की पुत्री कालिन्दी जी से हुआ। उज्जैन की राजकुमारी मित्रविन्दा से तथा कोसल देश के राजा नग्नजित की पुत्री सत्या के साथ विवाह का प्रसंग भी मिलता है।

प्रसिद्ध दैत्य भौमासुर ने इन्द्र के कुण्डल और स्थान छीन लिये थे। उसने श्रीकृष्ण की स्तुति की और उससे सहायता मांगी। श्रीकृष्ण ने भौमासुर को मार गिराया तथा उसके द्वारा बंदी बनाई गई सोलह हजार राजकुमारियों को स्वतंत्र करा दिया। भागवत् के अनुसार इन सब का विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ। करुष देश के अज्ञानी राजा पौण्ड्रक ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास एक दूत भेजकर यह कहलाया कि ''भगवान् वासुदेव मैं हूँ। अतः मेरी शरण में आ जा। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मुझ से युद्ध करना होगा। वह पौण्ड्रक काशी में अपने

मित्र राजा के साथ रह रहा था। अतः श्री कृष्ण काशी की ओर ही रवाना हो गये। उसे देख कर पौण्ड्रुम और काशी नरेश अपनी सेना के साथ युद्ध भूमि में आये। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ था। श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रुक तथा काशी नरेश का वध कर दिया।

द्वारका पुरी की राज सभा में जरासन्ध के द्वारा बंदी बनाए गए राजाओं का दूत आया। उन्होंने श्रीकृष्ण से आश्रय मांगा। आपने जरासन्ध को अठारह बार छोड़ा है। आपका बल और पराक्रम और शक्ति अनन्त है। अतः बंदी राजाओं की रक्षा करें। तभी महर्षि नारद युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की सूचना देते हैं। इस पर श्रीकृष्ण ने उद्धव से परामर्श किया कि कौन-सा काम पहले किया जाए। उद्धव ने कहा राजसूय यज्ञ का प्रयोजन भी सभी दिशाओं पर राज्य स्थापित करता है। फिर जब तक जरासन्ध जीवित है तब तक राजसूय यज्ञ कैसे सम्पन्न हो सकता है। यदि जरासन्ध सौ अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध भूमि में आ गया तो उसे परास्त करना असम्भव है। क्योंकि उसमें हज़ार हाथियों का बल हैं उसका मुकाबला तो केवल भीम ही कर सकता है। जरासन्ध बहुत बड़ा ब्राह्मण भक्त भी हैं यदि ब्राह्मण उससे किसी बात की याचना करते हैं तो वह कभी इन्कार नहीं करता। इसलिये भीमसेन ब्राह्मण वेश में जाये और द्वन्द्व युद्ध की भीक्षा मांगे और द्वन्द्व युद्ध में वह जरासन्ध को पराजित कर दे। इस प्रकार उद्धव के प्रस्ताव का सब सभासदों ने स्वागत किया। श्रीकृष्ण अपने साथियों सहित इन्द्रप्रस्थ पहुँचे तब ब्राह्मणों ने वहाँ वेद मंत्रों से उसका स्वागत किया। महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुये कहा कि मैं राजसूय यज्ञ के द्वारा देवताओं का पूजन करना चाहता हूँ। आप मेरे इस संकल्प को पूर्ण कीजिये।

इस पर श्रीकृष्ण ने कहा—हे धर्मराज ! आपका निश्चय बहुत ही उत्तम है। इसमें सभी लोकों में आपकी मंगल कीर्ति का विस्तार होगा। आपका यह यज्ञ समस्त प्राणियों का अभीष्ट है। आप पृथ्वी के समस्त राजाओं को जीत लें और फिर इस महायज्ञ का अनुष्ठान करें। तब

राजाओं को जीतने तथा उनसे कर लेने के लिये उसके चारों भाई चारों दिशाओं में चले गये। वे बहुत सारा धन लेकर आये। महाराज युधिष्ठिर ने यह सुना कि जरासन्ध को नहीं जीता जा सकता तो कृष्ण ने उसे उद्धव का प्रस्ताव सुना दिया। उसी अनुसार भीष्म, अर्जुन और कृष्ण जरासन्ध की राजधानी में ब्राह्मण के वेश में चले गये। जरासन्ध ने इन्हें देखा तो उन्हें पहचान न पाये। फिर ब्राह्मणों के वेश में गये हुये तीनों क्षत्रियों का सम्मान किया और उनसे आने का कारण पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा कि हम भिक्षा प्राप्त करने वाले ब्राह्मण नहीं है। अतः आप हम में से किसी एक के साथ द्वन्द्व करें। उन्होंने अपनी पहचान बता दी। इस पर जरासन्ध ने भीम को द्वन्द्व के लिये ललकारा। दोनों गदा युद्ध के लिये एक दूसरे को ललकारने लगे। 27 दिन तक युद्ध चलता रहा। अंत में श्रीकृष्ण ने एक तिनके को फाड़ कर भीम को संकेत दे दिया। भीम ने जरासन्ध के पैर पकड़ कर धरती पर पटक दिया और फिर उसे बीच से फाड़ दिया। जरासन्ध के शरीर के दो टुकड़े हो गये और उसकी मृत्यु हो गई।

जरासन्ध ने 2,800 राजाओं को एक किले में बंदी बना रखा था। श्रीकृष्ण ने किले का ताला तोड़ कर सभी राजाओं को आज़ाद कर दिया और वहाँ का राज्य जरासन्ध के पुत्र सहदेव को दे दिया। इन तीनों ने पुनः इन्द्रप्रस्थ आकर अपनी विजय के शंख नाद किये। अतः राजसूय की तैयारियाँ आरम्भ हो गई। उस समय देवताओं ने समान तेजस्वी याजकों ने धर्मराज युधिष्ठिर से विधिपूर्वक राजसूय यज्ञ कराया। अब सभासद् इस विषय पर विचार करने लगे कि सदस्यों में पहले किसकी पूजा-अग्रपूजा होनी चाहिये। इस पर सहदेव ने कहा कि श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ और अग्रपूजा के अधिकारी हैं। अतः धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को सर्वश्रेष्ठ आसन पर बैठा कर उनका अभिवादन किया।

शिशुपाल श्रीकृष्ण से ईर्ष्या करता था। इसलिये उसे यह स्वीकार नहीं था कि इस यज्ञ में सहदेव जैसे बालक के कहने मात्र से

कृष्ण की पूजा हो। वह भरी सभा में हाथ उठा कर कठोर वचन बोलने लग पड़ा। परन्तु श्रीकृष्ण चुपचाप सुनते रहे और मुस्कराते रहे। वे कुछ भी नहीं बोले। उन्हें चुप देखकर शिशुपाल को और भी क्रोध आ गया। पाण्डव, मत्स्य और केकय राज ने शिशुपाल को शान्त रहने के आदेश दिये। परन्तु वह तो युद्ध के लिए तत्पर हो उठा। उन्हें लड़ते देख श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए। अपने पक्षपाती राजाओं को शान्त कर दिया और स्वयं क्रोध कर शिशुपाल का सिर काट दिया। शिशुपाल के मारे जाने पर वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया। उसके साथी स्थान छोड़ कर भाग गये।

धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ पूर्ण होने पर ब्राह्मणों और ऋत्विजों को पुष्कल दक्षिणा दी तथा सबका सत्कार करके विदा किया। कुछ समय बाद श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर से विदाई ली। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल वध, जरासन्ध वध, बंदी राजाओं की मुक्ति से धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ को पूर्ण बल मिला। इस यज्ञ को देखकर सभी अत्यंत प्रसन्न थे परन्तु दुर्योधन को इससे बड़ी ईर्ष्या और पीड़ा हुई। वह क्रोध से भर कर हस्तिनापुर चला गया।

इस स्कन्ध के बयासीवें अध्याय में श्रीकृष्ण और बलराम से गोपियों की भेंट का वर्णन मिलता है। एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण लगा। इस अवसर पर भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के लोग कुरुक्षेत्र में एकत्रित हो रहे थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण आदि यदुवंशी भी कुरुक्षेत्र में आये हुये थे। उन्हें देखने के लिये गोपियाँ भी आ गई थी। उन सब ने श्रीकृष्ण के दर्शन किये। उनसे मिले और उत्साह से भर गये। श्रीकृष्ण ने गोपियों को आत्मज्ञान की शिक्षा से शिक्षित किया। यहीं पर उनका मिलन पाण्डवों से भी हुआ। श्रीकृष्ण ने उनका भव्य स्वागत किया। अन्य आये हुये ऋषियों ने भी वासुदेव आदि को ज्ञान का उपदेश दिया। उनका कथन था–

कर्मों के द्वारा काम वासनाओं और कर्म फलों का आत्यन्तिक

नाश करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि यज्ञ आदि के द्वारा समस्त यज्ञों के अधिपति भगवान् विष्णु की श्रद्धापूर्वक आराधना करें ।

बलराम जी अपनी बहन सुभद्रा का विवाह धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन से करना चाहते थे । परन्तु श्रीकृष्ण इसके लिए सहमत नहीं थे । सुभद्रा अर्जुन से प्यार करने लगी और अर्जुन भी सुभद्रा को चाहने लगा । यह बात श्रीकृष्ण से छिपी न रह सकी । एक बार सुभद्रा देव दर्शन के लिये रथ पर बैठ कर द्वारका दुर्ग से बाहर निकली । उसी समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण की सहमति से सुभद्रा का हरण कर लिया । यह समाचार बलराम को बहुत दुःखदायी लगा । परन्तु श्रीकृष्ण के समझाने पर वे शांत हो गये । बलराम ने प्रसन्न होकर वर-वधू को आशीर्वाद दे दिया । इसी स्कन्ध के अट्ठासीवें अध्याय में शिवजी को संकट मोचन के रूप दर्शाया गया है । यद्यपि शिवजी ने समस्त भोगों का परित्याग कर रखा है । परन्तु उसकी उपासना करने वाले भोग सम्पन्न हो जाते हैं । परन्तु विष्णु के उपासक भोग सम्पन्न नहीं होते । अश्वमेध यज्ञ के पश्चात् युधिष्ठिर ने भी श्रीकृष्ण से यही प्रश्न किया था । तब श्रीकृष्ण ने कहा था–

जिस पर वह प्रभु कृपा करता है, उसका सब धन वह धीरे-धीरे छीन लेता है । उसके सगे संबंधी उसे छोड़ देते हैं । तब वह सुखों से मुँह मोड़ लेता है तब प्रभु उस पर अपनी कृपा की वर्षा करते हैं । इससे उसे परम सूक्ष्म अनन्त सच्चिदानंद स्वरूप पर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है ।

यह साधना अत्यंत कठिन है । अतः सामान्य लोग इसे छोड़ अन्यान्य देवताओं की आराधना करते हैं । दूसरे देवता आशुतोष हैं । वे झटपट पिघल पड़ते हैं । वे अपने भक्तों को साम्राज्य लक्ष्मी दे देते हैं । एक प्राचीन इतिहास है कि भगवान् शंकर ने एक बार प्रसन्न होकर वृकासुर को वरदान मांगने के लिये कहा । तब वृकासुर ने प्राणियों को

भयभीत करने वाला यह वर मांगा कि मैं जिस पर भी हाथ रखूँ। वही मर जाए। यह याचना सुन कर भगवान् रुद्र पहले तो अनमने हो गये परन्तु बाद में हँसकर कह दिया कि ऐसा ही हो। इस वर को पाकर वृकासुर के मन में पार्वती जी को हरण करने की लालसा उत्पन्न हो गई। वह मूर्ख इस वर की परीक्षा शंकर के सिर पर अपना हाथ रख कर करने लगा। अब शंकर भयभीत थे। वे डर कर भागने लगे। अंत में शिवजी वैकुंठ में नारायण के पास गये। नारायण ने देखा कि शिवजी संकट में पड़े हैं। तब वे अपनी योगमाया से ब्रह्मचारी बन कर धीरे-धीरे वृकासुर की ओर आने लगे। वृकासुर को देखकर उन्होंने बड़ी नम्रता से झुककर प्रणाम किया। उन्होंने कहा शकुनि नन्दन वृकासुर आप तो बहुत थके हुये जान पड़ते हैं। आप बहुत दूर से आ रहे हैं। तनिक विश्राम कर लीजिये।

देखिये! यह शरीर ही सारे सुखों की जड़ है। इसी से सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं। इस समय आप क्या करना चाह रहे हैं। यदि मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये। उनके इस प्रकार पूछने पर शंकर के वरदान की सारी बात उन्हें बता दी। तब ब्रह्मचारी ने कहा भाई हम उनकी बात का विश्वास नहीं करते। वह तो प्रजापति दक्ष के शाप से पिशाच भाव को प्राप्त हो गया था। दानवराज आप इतने बड़े होकर उस पिशाच की बात पर विश्वास कर लिया। यदि आप को विश्वास है तो अपने सिर पर हाथ रख कर परीक्षा कर लें। यदि शंकर की बात असत्य निकले तो उस पिशाच को मार डालिये। मोहित करने वाली इस अद्भुत और मीठी वाणी को सुनकर उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और उसने अपने सिर पर अपना हाथ रख लिया। बस उसी क्षण उसका सिर फट गया और धरती पर गिर पड़ा। इस प्रकार शंकर इस विकट संकट से मुक्त हो गये।

इस स्कन्ध के नवासीवें अध्याय में भृगु जी द्वारा त्रिदेवों की

परीक्षा का वर्णन भी मिलता है। एक बार सरस्वती नदी के पावन तट पर यज्ञ आरम्भ करने के लिये बड़े-बड़े ऋषि मुनि एकत्र होकर बैठे। उन लोगों में इस विषय पर वादविवाद चला कि ब्रह्मा, शिव और विष्णु में कौन बड़ा है? यह जानने के लिये उन्होंने ब्रह्मा पुत्र भृगु जी को उनके पास भेजा। भृगु जी सबसे पहले ब्रह्मा जी की सभा में गये। उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिये न तो उन्हें नमस्कार किया और न ही उनकी स्तुति की। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि ब्रह्मा जी अपने तेज से दहक रहे हैं। उन्हें क्रोध आ गया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि यह तो मेरा ही पुत्र है तो उन्होंने अपने क्रोध को विवेक से दबा दिया। वहाँ से भृगु कैलाश गये। जब भगवान् शंकर ने देखा कि मेरे भृगु जी आये हैं, तब उन्होंने खड़े होकर आलिंगन करने हेतु भुजाएं फैला दी। परन्तु भृगु ने इसे स्वीकार न किया और कहा—तुम लोक और मर्यादाओं का उल्लंघन करते हो, इसलिये मैं तुमसे नहीं मिलता।

भृगु जी की यह बात सुनकर शंकर को बहुत क्रोध आया। उन्होंने त्रिशूल उठा कर उसे मारना चाहा। परन्तु उसी समय भगवती सती ने उनके चरणों पर गिर कर बहुत अनुनय विनय की और उनका क्रोध शान्त हुआ। अब भृगु जी भगवान् विष्णु के निवास स्थान वैकुण्ठ में गये। उस समय भगवान् विष्णु लक्ष्मी जी की गोद में अपना सिर रखकर लेटे हुये थे। भृगु जी ने जाकर उनके वक्ष स्थल पर लात मारी। भगवान् विष्णु लक्ष्मी जी के साथ उठ बैठे और अपनी शय्या से नीचे उतर कर मुनि को प्रणाम किया। ब्रह्मन्! आपका स्वागत है, आप भले पधारे। इस आसन पर बैठकर कुछ क्षण विश्राम कीजिये। प्रभो! मुझे आपके शुभागमन का पता न था। इसीलिये मैं आपकी आगवानी नहीं कर सका। मेरा अपराध स्वीकार करें। यह कहकर विष्णु ने भृगु के चरणों को सहलाने लगे। आपके चरण कमलों से मेरे सारे पाप धुल गये।

भृगु जी भगवान् की वाणी सुनकर सुखी और तृप्त हो गये। भक्ति के उद्रेक से उनका गला भर आया। वे वहाँ से लौटकर ब्रह्मवादी मुनियों के सत्संग में आये और उन्हें ब्रह्मा, शिव और विष्णु के यहाँ जो कुछ अनुभव हुआ, वह सब कह सुनाया। उनका अनुभव सुन कर सभी ऋषि-मुनियों को बड़ा विस्मय हुआ। उनका सन्देह दूर हो गया। तब से भगवान् विष्णु को ही सर्वश्रेष्ठ मानने लगे। क्योंकि वे ही शान्ति और अभय के उद्गम स्थान हैं। वास्तव में, सरस्वती तट के ऋषियों ने अपने लिये नहीं मनुष्यों का सन्देह दूर करने के लिये ऐसी युक्ति रची थी।

इस स्कन्ध के नब्बेवें अध्याय में भगवान कृष्ण के लीला-विहार का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में श्रीकृष्ण की 16,108 रानियों और 8 पटरानियों का उल्लेख मिलता है जो कि बिल्कुल ही निराधार है। श्रीकृष्ण को इन रानियों के साथ सहवास करते वर्णित किया गया है जबकि श्रीकृष्ण पूर्णरूपेण योगेश्वर थे। वास्तव में भौमासुर को मार कर उसकी क़ैद से श्रीकृष्ण ने 16,108 राजकन्याओं को मुक्त कराया था। वे लज्जा के मारे अपने घर नहीं जाना चाहती थीं। अतः श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने ही राज्य में आश्रय दे दिया। आश्रय देने मात्र से किसी को भी पत्नी नहीं का जा सकता। हाँ ऐसा हो सकता है कि अपने आश्रयदाता के लिये कोई जीवात्मा अपने सर्वस्व त्याग हेतु तत्पर हो जाये तो इसे समर्पण, सत्यनिष्ठा और बलिदान का समन्वय ही कहा जा सकता है, भोग विलास का नहीं। इस प्रकार उन्हें श्रीकृष्ण की पत्नियाँ मानना घोर अपराध है। श्रीकृष्ण की केवल एक ही पत्नी थी और वह थी रुकमणि। उन्होंने रुकमणि के साथ 12 वर्ष तक ब्रदीनाथ के मंदिर में कठोर तपस्या की थी। फिर उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम प्रद्युम्न था। वह बिल्कुल अपने पिता के समान था। पिता-पुत्र जब इकट्ठे चलते थे तो रुकमणि असमंजस में पड़ जाती थी।

यदुवंश के बालकों को शिक्षा देने के लिये तीन करोड़ अठासी लाख आचार्य थे। स्वयं महाराज उग्रसेन के साथ एक नील के लगभग सैनिक रहते थे जो कि कपोलकल्पना है।

एकादश स्कन्ध

भागवत पुराण के पूर्व स्कन्धों में दर्शाया गया है कि श्रीकृष्ण और बलराम ने दैत्यों का संहार कर तथा अन्य दुष्ट राजाओं को पाण्डवों के हाथों मरवा कर पृथ्वी से पाप अत्याचार मिटा दिया। परन्तु श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि पृथ्वी का भार अभी भी शेष है। क्योंकि जो यदुवंश श्रीकृष्ण की छत्रछाया में पल रहा है वह मर्यादाओं को तोड़ कर उच्छशृंखल हो गया है। अब वे उसके विनाश हेतु ब्राह्मणों के शाप को माध्यम बनाने लगे। वास्तव में कुछ उदण्ड यदुवंशी बालक एक बालक का स्त्री रूप में शृंगार कर उसे सजा कर ब्राह्मणों के पास ले आये और कहने लगे कि ब्राह्मण देवता आप अन्तर्यामी है। यह सुन्दर स्त्री गर्भवती है। इसका एक प्रश्न है परन्तु यह पूछने से संकुचाती है। इसलिये हे देवताओं आप बतायें कि यह पुत्र जनेगी अथवा पुत्री। इस पर ब्राह्मणों को बालकों की उद्दण्डता पर क्रोध आया और शाप दिया कि यह मूसल जनेगी और यह मूसल ही तुम्हारे कुल के विनाश का कारण होगा।

यह सुनकर यदुवंशी बालक भाग गये परन्तु जब उन्होंने लड़के रूपी स्त्री का शृंगार उतारा तो उन्हें वहाँ मूसल ही मिला। इससे तो वह भयभीत हो गये। उन्होंने इसे अपने बड़ों को बताया तो बड़े बूढ़ों ने उस मूसल का चूरा बना कर समुद्र में फेंक दिया। यह चूरा मछली के पेट में चला गया तथा उसी मछली को शिकारी ने पकड़ लिया। शिकारी ने मछली को मारा तो उसमें से लोहे के कण उसे मिले। शिकारी ने उन लोहे के कणों को अपने तीन के अग्र भाग पर लगा

दिया । इसी तीर से श्रीकृष्ण मानव शरीर को छोड़ अपने धाम को चले गये ।

इस स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में कहा गया है कि आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियों में आत्मा रूप से, नियंता रूप से स्थित हैं । जो सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ता को ही देखता है । वास्तव में उसे ही भगवान का परम प्रेमी उत्तम भागवत समझना चाहिये । इस स्कन्ध के तृतीय अध्याय में परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का वर्णन करते हुये बताया गया है कि वह इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों है, बनने वाला भी है और बनाने वाला भी है । परन्तु स्वयं कारण-रहित है । जो स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्ति अवस्थाओं में उनके साक्षी के रूप में विद्यमान है तथा उनके अतिरिक्त समाधि में ज्यों का त्यों एकरस रहता है । जिसकी सत्ता से सत्तावान होकर शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण अपना-अपना काम करने में समर्थ होते हैं । वही परम सत्ता परमात्मा कहलाती है ।

इसी अध्याय में राज निमि ने योगेश्वरों से पूछा कि मुझे कर्म, अकर्म और विकर्म के बारे में बतायें । उन्हें उत्तर दिया गया कि कर्म, अकर्म और विकर्म तीनों को एक मात्र वेद के द्वारा ही जाना जा सकता है । वेद अपौरुषेय हैं—ईश्वर रूप हैं । इसलिये उनके तात्पर्य का निश्चय करना अत्यंत कठिन है जिनके करने से ह्रदय में प्रसन्नता, संतोष, निर्भय आदि गुण उत्पन्न हों वे कर्म कहलाते हैं और जिन कर्मों के करने में हृदय में लज्जा, संकोच, भय आदि उत्पन्न हों वे अकर्म हैं । कर्मों को निष्काम भाव से करने का नाम विकर्म है । लोक कल्याण के लिये अपने निजी स्वार्थों का परित्याग करते हुये करने योग्य कर्मों का नाम विकर्म है ।

इस स्कन्ध के सातवें अध्याय में ब्रह्मवेता दत्तात्रेय जी ने अपने चौबीस गुरुओं से प्राप्त शिक्षा का वर्णन किया है । जैसे मकड़ी अपने हृदय से मुँह के द्वारा जाला फैलाती है, उसी में विहार करती है और फिर उसे निगल जाती है । वैसे ही परमेश्वर भी इस जगत को अपने से

उत्पन्न करते हैं, उसमें जीव रूप से विहार करते हैं और फिर उसे अपने में लीन कर लेते हैं। वास्तव में, यह मनुष्य शरीर है तो अनित्य ही, परन्तु इससे परम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो सकती है। इस जीवन का मुख्योद्देश्य मोक्ष ही है। विषय भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं। इसलिये उनके संग्रह में यह अमूल्य मानव जीवन नहीं खोना चाहिये।

बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि मृत्यु से पूर्व ही ऐसी साधना कर ले जिस से वह जन्म-मरण के चक्र से छूट जाये। यह शरीर एक वृक्ष है। इसमें घोंसला बना कर जीव रूपी पक्षी निवास करता हैं यमराज के दूत इस शरीर को प्रतिक्षण काट रहे हैं। जैसे पक्षी कटते हुये वृक्ष को छोड़ कर उड़ जाता है वैसे ही अनासक्त भाव से जीव भी इस शरीर को छोड़ कर मोक्ष का भागी बन जाता हैं परन्तु आसक्त जीव जो अपने घोंसले से चिपका रहता है सदा दुःख ही भोगता है।

इस स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय में सांख्ययोग का वर्णन मिलता है। युगों से पूर्ण सम्पूर्ण दृश्य और द्रष्टा जगत् और जीव भेद भाव से रहित केवल ब्रह्म ही होते हैं। यह ब्रह्म ही दृश्य और द्रष्टा के रूप में दो भागों में विभक्त हो जाता है। उनमें से एक को प्रकृति कहते हैं। उसी ने जगत् में कार्य और कारण का रूप धारण किया है। दूसरी वस्तु को जो ज्ञान स्वरूप है पुरुष कहते हैं। प्रकृति से ही सत्य, रज और तम इन तीनों गुणों की उत्पत्ति हुई। महत्तत्व में विकार होने पर अहंकार व्यक्त हुआ। यह अहंकार ही जीवों को मोह में डालने वाला है। अहंकार ही पंच तन्मात्रा, इन्द्रिय और मन का कारण हैं इससे पाँच भूतों की उत्पत्ति हुई। ये सभी पदार्थ एकत्र होकर परस्पर मिल गये ब्रह्माण्ड रूप उत्पन्न हो गया। विश्व कमल की उत्पत्ति से ही ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। तब उन्होंने लोकों की रचना की। जगत् में छोटे-बड़े जितने भी पदार्थ बनते हैं सब प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से सिद्ध होते हैं। इसका उपादान कारण प्रकृति है, परमात्मा इसका अधिष्ठाता है तथा इसे प्रकट करने वाला काल है। जब तक परमात्मा की ईक्षण शक्ति अपना

काम करती रहती है तब तक उसकी पालनप्रवृति बनी रहती है । जब परमात्मा प्रलय का संकल्प करता है तब प्राणियों के शरीर अन्न में, अन्न बीज में, बीज भूमि में, भूमि गंध में, गंध जल में, जल रस में, रस तेज में, तेज रूप में, रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में तथा आकाश शब्द में लीन हो जाता है ।

द्वादश स्कन्ध

इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में कलियुग के राजवंशों का वर्णन मिलता है । श्री शुकदेव जी ने कहा कि जरासंध के पिता बृहद्रथ के वंश का अन्तिम राजा पुरंजय होगा । शुनक उसका मंत्री होगा । वह राजा को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राजसिंहासन पर बैठायेगा । ये 148 वर्ष तक पृथ्वी का राज्य करेंगे । इनके बाद शिशुनाग नाम का राजा होगा । यह वंश कलियुग के 360 वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करेंगे । महानन्द की शूद्रा पत्नी के गर्भ से नन्द नाम का पुत्र होगा । वह बड़ा बलवान् होगा । लोग उसे महापद्म भी कहेंगे । वह क्षत्रिय राजाओं के विनाश का कारण बनेगा । तभी से राजा लोग शूद्र और अधार्मिक हो जायेंगे । इसके आठ पुत्र होंगे और सौ वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे । कौटल्य, वात्स्यायन तथा चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण उसके वंश का नाश करेगा और चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा के पद पर बैठायेगा । उसका पुत्र होगा बिन्दुसार, बिन्दुसार का अशोक वर्धन, अशोक वर्धन का सुयश, सुयश का संगत, संगत का शालिशूक और शालिशूक का सोमशर्मा । मौर्य वंश 137 वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग करेगा ।

इसके बाद शुंगवंश 112वर्ष तक पृथ्वी का पालन करेगा । इसके बाद कण्व वंशियों का राज्य होगा । यह 345 वर्ष तक चलेगा । इनके बाद 30 अन्य राजा होंगे जो 456 वर्ष तक पृथ्वी का राज्य भोगेंगे । इनके बाद 8 यवन और 14 तुर्क राज्य करेंगे । ये सब 1089

वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे। इनके बाद 11 मौन नरपति 300 वर्ष तक पृथ्वी का शासन करेंगे। ये सब राजा आचार-विचार में मलेच्छ होंगे। ये एक समय में भिन्न-भिन्न प्रान्तों पर राज्य करेंगे। ये दुष्ट स्त्री, बच्चे, बूढ़े, गौ और ब्राह्मण को भी मारने से नहीं हिचकेंगे। अंत में ये स्वयं ही नष्ट हो जाएंगे।

दूसरे अध्याय में धर्म पर चर्चा की गई है कि कलियुग में धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, आयु, बल आदि का क्षय हो जायेगा। जिसके पास धन होगा वही कुलीन और सदाचारी कहलायेगा। कुल, शील, योग्यता आदि की परख नहीं होगी। स्त्री-पुरुष की श्रेष्ठता का आधार शील-संयम न होकर रति कौशल होगा। ब्राह्मण की पहचान केवल यज्ञोपवीत से होगी। जो बोलने में चतुर होगा वह ही पण्डित माना जायेगा। धर्म का सेवन यश के लिये किया जायेगा। इस काल में प्राणियों के शरीर छोटे-छोटे, क्षीण और रोगग्रस्त होंगे। दूध-धन-धान्य में कमी आ जाएगी। वनस्पति भी कम हो जायेगी। वर्षा आदि भी कम होने लगेगी। इससे सूखा पड़ेगा। जनसंख्या कम हो जायेगी। गृहस्थ याज्ञिक अग्नि से शून्य हो जाएंगे। चारों ओर छल-कपट और प्रपंच का राज्य होगा। फिर कल्कि भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे। जिस समय श्रीकृष्ण परम धाम को पधार गये उसी समय कलियुग ने संसार में प्रवेश किया।

इस स्कन्ध के चौथे अध्याय में काल के स्वरूप का वर्णन किया हैं एक हज़ार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के इस दिन को ही कल्प भी कहा गया है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं। कल्प के अन्त में उतने ही समय तक रात्रि रहती है जिसे प्रलय भी कहा जाता है। उस समय ये तीनों लोक लीन हो जाते हैं। उनका प्रलय हो जाता है।

इस प्रकार जब जल प्रलय हो जाता है, तब जल पृथ्वी का विशेष गुण गंध को ग्रस लेता है। गंध गुण के जल में लीन हो जाने पर

पृथ्वी का प्रलय हो जाता है। वह जल में घुल कर जल रूप बन जाती है। तत्त्वदर्शी लोगों का मत है कि ब्रह्मा से लेकर तिनके तक जितने प्राणी या पदार्थ हैं, सभी हर समय पैदा होते और मरते रहते हैं। नित्य रूप से उत्पत्ति और प्रलय होता रहता है। यह प्रलय चार प्रकार की होती है—नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय और आन्तयिक प्रलय। वास्तव में काल की सूक्ष्म गति ऐसी ही है।

पाँचवे अध्याय में शुकदेव जी ने अन्तिम उपदेश में बताया कि जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से बीज की उत्पत्ति होती है वैसे ही एक देह से दूसरी देह की और दूसरी देह से तीसरी देह की उत्पत्ति होती है। जैसे लकड़ी से आग सर्वथा अलग रहती है वैसे आत्मा भी शरीर आदि से सर्वथा अलग है। मन ही आत्मा के लिये शरीर की कल्पना कर लेता है और उस मन की सृष्टि करती है माया। वास्तव में, माया ही जीव के संसार चक्र में पड़ने का कारण है। अतः जीव को चाहिये कि अपने विवेकमयी बुद्धि को परमात्मा के चिन्तन से पूर्ण कर ले और अपने अन्तःकरण में परमात्मा का साक्षात कर ले।

सातवें अध्याय में अथर्ववेद की शाखाओं पर प्रकाश डाला गया है। अथर्ववेद के ज्ञाता सुमन्तु मुनि थे। उन्होंने इसे अपने प्रिय शिष्य कबन्ध को पढ़ाया। कबन्ध ने उसके दो भाग करके पथ्य और वेददर्श को उसका अध्ययन कराया। आगे पथ्य के तीन और वेददर्श के चार शिष्य हुये। अंगिरा गोत्र उत्पन्न शुनक के दो शिष्य —बभ्रु और सैन्धवायन थे। उन लोगों ने दो संहिताओं का अध्ययन किया। अथर्ववेद के आचार्यों में कश्यप, अंगिरस आदि कई आचार्य हुये हैं।

आठवें अध्याय में मार्कण्डेय जी की तपस्या का वर्णन मिलता है। मार्कण्डेय जी विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके तपस्या और स्वाध्याय से सम्पन्न हो गये थे। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था। वे प्रातः सायं अग्नि होत्र करते तथा परमात्मा के ध्यान में

लीन हो जाते । साधना करते हुये छः मन्वन्तर व्यतीत हो गये । सातवे मन्वन्तर में जब इन्द्र को पता चला तो वह भयभीत हो गया । उसने मार्कण्डेय की तपस्या भंग करने के अत्यंत प्रयास किये । परन्तु सफल न हो पाये । तब नारायण प्रकट हुये और उन्हें अभीष्ट वर मांगने के लिये कहा । तब मार्कण्डेय ने नारायण की माया को देखने की इच्छा प्रकट की । तब उन्होंने जाना कि उस परम शक्ति की इच्छा से ही सूर्यदेव अपने छः गणों के साथ सर्वत्र विचरते रहते हैं । ऋषिगण स्तुति करते हैं गंधर्व उनका यशगान करते हैं । अप्सराएं नृत्य करती हैं । नागगण उनके रथ को कसे रहते हैं । यक्ष गण रथ का साज सजाते हैं । इस प्रकार अनादि, अनन्त, अजन्मे परमात्मा ही कल्प-कल्प में इस सृष्टि का सृजन करके समस्त लोकों का पालन पोषण करते हैं ।

बारहवें और अंतिम अध्याय में सम्पूर्ण भागवत का सार दिया गया है । उस ब्रह्म में ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती हैं महतत्व आदि के क्रम से प्राकृतिक सृष्टि की उत्पत्ति आदि विषयों का विवेचन किया गया है । प्रलय काल में परमात्मा की स्थिति का वर्णन मिलता है । स्वायम्भुव मनु और स्त्रियों की अत्यंत उत्तम आद्या प्रकृति शतरूपा का जन्म हुआ । चौथे स्कन्ध में मरीचि आदि नौ प्रजापतियों की उत्पत्ति और दक्ष यज्ञ का विध्वंस आदि का वर्णन मिलता है । पांचवें स्कन्ध में प्रियव्रत का उपाख्यान, भरत के चरित्र, सागर, पर्वत और नदियों का वर्णन मिलता है । छठे स्कन्ध में दक्ष की उत्पत्ति, दक्ष-पुत्रियों की सन्तान, वृत्रासुर की उत्पत्ति और परमगति का निरुपण है । सातवें स्कन्ध में दैत्यराज हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष तथा प्रह्लाद के उत्कृष्ट चरित्र को अंकित किया गया है ।

आठवें स्कन्ध में मन्वन्तरों की कथा तथा कूर्म,मत्स्य, वामन आदि विषयों का वर्णन हुआ है । नवें स्कन्ध में राजवंशों का वर्णन एवम् ययाति के बड़े लड़े यदु का वंश विस्तार कहा गया है । दशम

स्कन्ध में श्रीकृष्ण का जन्म, गोकुल में पालन पोषण, असुरों का संहार तथा मथुरा में कंस आदि दुष्टों के नाश का वर्णन है। सांदीपनी आश्रम में शिक्षा प्राप्त करना तथा जरासन्ध की सेनाओं का मुकाबला करना, काल यवन की मृत्यु आदि का वर्णन मिलता है। भौमासुर जैसे दैत्य को मारना तथा उसके चंगुल से 16,108 राज कन्याओं को मुक्त कराना तथा उन्हें अपने राज्य में आश्रय देने जैसे अद्‌भुत कर्मों का उल्लेख भी मिलता है।

ग्यारहवें स्कन्ध में ब्राह्मणों के शाप के कारण यदुवंश के संहार का चित्रण मिलता हैं इसी स्कन्ध में श्रीकृष्ण और उद्धव का संवाद भी अत्यंत विचारणीय है। इसमें सम्पूर्ण आत्मज्ञान का निरुपण हुआ है। श्रीकृष्ण के निर्वाण पद को भी वर्णित किया गया है। बारहवें स्कन्ध में विभिन्न युगों के लक्षण तथा उनमें रहने वाले लोगों का वर्णन भी मिलता है। राजर्षि परीक्षित के शरीर त्याग तथा वेदों के शाखा विभाजन का प्रसंग भी परिलक्षित होता है।

सर्वप्रथम यह भगवद्‌ज्ञान भगवान् नारायण ने ब्रह्मा जी के लिये प्रकट किया। ब्रह्मा जी ने नारद को, नारद ने श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास जी को, व्यास जी ने श्री शुकदेव जी को तथा श्री शुकदेव जी से राजर्षि परीक्षित ने सुना। वे परम शुद्ध एवम् सनातन हैं। दुःख-सुख, हानि-लाभ, जय-पराजय, जन्म-मरण आदि से रहित हैं। वास्तव में, वे ही सच्चिदानंद हैं। समस्त विश्व उन्हीं से उत्पन्न होता है और उन्हीं में ही लय हो जाता है।

भागवत पुराण के विषय में हनुमान प्रसाद पोद्दार लिखते हैं–

श्रीमद्‌भागवत भारतीय वाङ्मय का मुकुटमणि है। वैष्णवों का तो यह सर्वस्व ही है। भारतवर्ष में जितने भी वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित हैं उन सभी में श्रीमद्‌भागवत का वेदों के समान आदर है।

–भागवत सुधा सागर, पृ० 4

वस्तुतः आजकल प्रस्तुत पुराण की कथाएं हिन्दुओं में सब ग्रंथों जैसे ''शिवपुराण'', ''गरुड़पुराण'', ''रामचरितमानस'', ''गीता'' आदि ग्रंथों से सबसे अधिक होती है। इसके भक्तजन इसको सुन-सुन कर नाचते हैं और आत्मविभोर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह ग्रंथ अनेक कथावाचकों की रोटी-रोज़ी का साधन बन चुका है। इसमें अनेक बातें अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और कथावाचक मुख्यतः इसकी बुरी बातों को छिपाते हैं और अच्छी बातों को भोले-भाले श्रोताओं को सुनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। यह सब कार्य लोगों की अज्ञानता व अंधविश्वास के कारण होता है। इसलिये महर्षि दयानंद कृत 'भागवतखण्डनम्' नामक पुस्तिका में प्रस्तुत ग्रंथ की कटु आलोचना की थी और इसे वेदविरुद्ध घोषित किया था। स्वामी शिवानंद लिखते हैं–

Bhagavata is a practical guide for all. It is indeed a wonderful book. It is a great treasure for man.

–Lord Krishna His Lila and Teaching P-XXIX

सारे संसार के लिए भागवत् एक क्रियात्मक गाइड है, वस्तुतः यह एक अद्भुत पुस्तक है व्यक्ति के लिए यह एक महान् कोष है।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)